ज्ञानसिंह मान के उपन्यासों में धार्मिक एवं नैतिक मूल्य

डॉ. प्रतिमा शर्मा

एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, गुरु नानक खालसा कॉलेज, यमुनानगर, हरियाणा, भारत

शोध आलेख सार: *धार्मिक और नैतिक मूल्यों का मानव जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि ये व्यक्ति को अच्छाई और बुराई में फर्क समझाते हैं और उसे सत्य की ओर मार्गदर्शन करते हैं। जब व्यक्ति सुधरता है, तो समाज और विश्व भी सुधार सकते हैं। हालांकि, आजकल लोग इन मूल्यों की अनदेखी करने लगे हैं, जिससे समाज में अंधविश्वास, पाखंड और हिंसा फैल रही है। डॉ. ज्ञान सिंह मान ने अपने साहित्य में इन मूल्यों की रक्षा की आवश्यकता को उजागर किया है, यह दिखाते हुए कि कैसे धर्म और नैतिकता के नाम पर समाज में कुरीतियाँ और अनैतिकता बढ़ रही हैं। उन्होंने दिखाया कि व्यक्ति के नैतिक पतन के कारण समाज में बलात्कार, नशा और अन्य अमानवीय कृत्य हो रहे हैं। लेखक ने इन कृत्यों का विरोध करते हुए आदर्शवादी जीवन जीने का संदेश दिया और बताया कि जब व्यक्ति सच्चे धर्म और नैतिकता को अपनाता है, तो उसका जीवन सुखमय होता है और समाज में शांति और प्रेम की भावना फैलती है।*

मुख्य शब्दः ज्ञानसिंह मान, धार्मिक एवं नैतिक मूल्य।

Article History

Received: 18/10/2024; Accepted: 28/11/2024; Published: 15/12/2024

ISSN: 3048-717X (Online) | https://takshila.org.in

Corresponding author: डॉ. प्रतिमा शर्मा, Email ID: pratimasharma1966gnkc@gmail.com

परिचय

संसार के विभिन्न भू–भागों में निवास करने वाली मानव–जाति का कोई न कोई निश्चित रूप से धर्म है। यही कारण है कि विद्वान मनीषियों तथा तत्त्व चिंतकों का ध्यान यथा समय इस ओर जाता रहा है। 'धर्म' शब्द की व्याख्या करना जितना कठिन है, उससे भी कठिन है उसके अर्थ को परिभाषित करना। धर्म कोई व्यक्त स्थूल शरीर नहीं, किन्तु एक ऐसा अनुभूत सूक्ष्म सत्य है, जिसे हम अपने अन्तश्चक्षुओं से देख पाते हैं। विद्वानों ने 'धर्म' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'धृ'[1] धातु से स्वीकार की है, जिसका अर्थ 'धारण करना' है। 'धर्म' शब्द उन संस्कृत शब्दों में है, जिसका प्रयोग कई अर्थों में होता आया है। यह शब्द अनेक परिवर्तनों एवं विपर्ययों के चक्र में घूम चुका है। स्पष्टतः यह शब्द 'धृ' धातु से बना है, जिसका तात्पर्य है धारण

[1] सं. द्वारिका प्रसाद शर्मा, संस्कृत –शब्दार्थ कौस्तुभ, पृ. 549

करना, आलम्बन देना तथा पालन करना। धर्म[2] और धर्मन्[3] शब्द वैदिक साहित्य में विधान अथवा प्रचलन के लिए व्यवहृत हुए हैं। 'बृहत् हिन्दी कोश' में धर्म का अर्थ इस प्रकार बताया गया है –अभ्युदय और निःश्रेयस का साधना भूत वेद विहित कर्म, एक प्रकार का अदृष्ट, जिससे स्वर्ग की प्राप्ति होती है, लौकिक–सामाजिक कर्त्तव्य, ऋषि, मुनि या पारलौकिक सुख की प्राप्ति हो।[4]

महाभारत में धर्म की व्याख्या निम्न प्रकार से है –

धारणाद्धर्ममित्याहुधर्मो धारयते प्रजाः।

यस्माद्धारणसंयुक्त : स धर्म इति निश्चयः।।[5]

अर्थात् धर्म प्रजा को धारण करता है, इसलिए धर्म कहलाता है, जिससे लोक का धारण हो वही निश्चित रूप में धर्म है।

स्वामी विवेकानंद ने धर्म की व्याख्या करते हुए कहा है, 'आत्मा की भाषा एक है, किन्तु जातियों की भाषाएँ अनेक होती हैं। धर्म आत्मा की वाणी है। वही वाणी अनेक जातियों की विविध भाषाओं तथा रीति–रिवाजों में अभिव्यक्त हो रही है।[6] गाँधी जी ने धर्म को अपने तरीके से व्याख्यायित किया है। उनकी धर्म सम्बन्धी व्याख्या धर्म ग्रन्थों के प्राचीन अर्थ के आधार पर नहीं है। उनके अनुसार, "मैं धर्म की किसी भी ऐसी व्याख्या को मानने से इन्कार करता हूँ जो महाविद्वानों की होने पर भी नैतिक भावना और बुद्धि के विरुद्ध है। मेरा धर्म हिन्दू धर्म नहीं बल्कि वह धर्म है, जो हिन्दुत्व से भी आगे जाता है, जो हिन्दुत्व के भीतर के सत्यों पर आधारित है, जो क्षण–क्षण पवित्रता प्रदान करने वाला है, जो आत्मा को तब तक बेचौन रखता है, जब तक कि वह परमात्मा से एकाकार न हो जाये। किसी को भी इस धोखे में नहीं रखना चाहिए कि संस्कृत में जो कुछ लिखा है एवं शास्त्रों में जो कुछ मुद्रित है, उसे आँख मूंदकर मानना ही धर्म है। नैतिकता के मूल–सिद्धान्त और सुनियोजित बुद्धि के जो विरुद्ध है, उसे नहीं मानना ही धर्म है, चाहे वह कितना ही प्राचीन क्यों न हो।''[7]

Improving Skillset
Takshila Journal of Research

[2] ऋग्वेद : 1/12/18

[3] अथर्वेद : 11/7/17

[4] सं. कालिका प्रसाद, बृहत् हिन्दी कोश, पृ. 552

[5] महाभारत, कर्ण पर्व, 69/58

[6] रामधारी सिंह 'दिनकर', संस्कृति के चार अध्याय, पृ. 606

[7] वही, पृ. 646

धर्म एवं दर्शन के श्रेष्ठ चिन्तक डॉ. राधाकृष्णन ने धर्म का स्वरूप इस प्रकार उद्घाटित किया है, "धर्म सम्पूर्ण जीवन की पद्धति है, वह नश्वर में अनिश्वर तथा अचिर में चिर का अनुसंधान है। धर्म जीवन का स्वभाव है। ऐसा नहीं हो सकता कि हम कुछ कार्य को धर्म की उपस्थिति में करें और शेष कार्यों के समय उसे भुला दें। धर्म ज्ञान और विश्वास से अधिक कर्म और आचरण में बसता है।''[8]

रवीन्द्र नाथ टैगोर के अनुसार, "जो दार्शनिक दर्शन को सरल रूप में दिखा सकते है –वे ही यथार्थ क्षमताशाली, धी–शक्तिमान हैं, जो सभ्यता अपनी समस्त व्यवस्था को सरलता के द्वारा सुशृंखल और सर्वत्र सुगम करके ला सकती है, वह सभ्यता ही यथार्थ में उन्नत है।.... धर्म उसी परिपूर्णता का सरलता का, एकमात्र चरमतम् आदर्श है।''[9]

पाश्चात्य विद्वान मैक्समूलर ने धर्म के बारे में कहा है कि – 'मेरा मत है कि संसार के महान् धर्मों में से प्रत्येक में एक दैवीय तत्त्व विद्यमान है। मैं समझता हूँ कि उनको शैतान की कारस्तानी बताना, जबकि वे सब ईश्वर के बनाए हुए हैं, ईश्वर की निन्दा करना है और मेरा मत है कि ऐसी कोई जगह नहीं है, जहाँ परमात्मा में विश्वास उस दैवीय स्फुरन के बिना हो गया हो, जो मनुष्य में कार्य कर रही दैवीय आत्मा का प्रभाव है।'[10] इडगर, वाटसन, होव के अनुसार, 'धर्म विश्वास का विषय है न कि बुद्धि परीक्षण का।'[11]

इस प्रकार विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रस्तुत धर्म की व्याख्याओं का अध्ययन करने से स्पष्ट हो जाता है कि सभी ने एक स्वर से धर्म को आचरण और नैतिकता के रूप में स्वीकार किया है। आचार और नैतिकता सामान्य धर्म के गुण है। तात्पर्य यह है कि धर्म (आचरण और नैतिकता जिसके पर्याय नहीं हो सकते) भी आत्मा का ही गुण है, जिसे आत्मा का धर्म या ईश्वर का धर्म, मानवता का धर्म कह सकते हैं। धर्म का यह व्यापक स्वरूप मानव धर्म होकर विभाजित नहीं। यह अखण्ड धर्म है, यदि खण्डित दिखाई देता है, तो केवल सम्प्रदायगत विभेद के कारण। विश्व के मानव ने इस धर्म को बराबर रौंदने और गिराने का प्रयत्न किया है, किन्तु ऐसा सम्भव नहीं हो सका। धर्म के विघटनकारी तत्त्वों ने अपने घृणित कर्मों द्वारा केवल ईर्ष्या एवं घृणा के फफोले ही फोड़े हैं, न कि धर्म के अक्षय स्वरूप को नष्ट किया है। इस प्रकार सत् धर्म मानव की प्रगति में साधक है तो रूढ़िग्रस्त धर्म उसकी प्रगति में बाधक है।

Improving Skillset
Takshila Journal of Research

ज्ञान सिंह मान के उपन्यासों में धार्मिक मूल्य

[8] रामधारी सिंह 'दिनकर', संस्कृति के चार अध्याय, पृ. 662

[9] रवीन्द्रनाथ टैगोर, धर्म का स्वरूप (अनुवादित) अनुवादक श्री राजेश दीक्षित, पृ. 6

[10] Maksmular, The life and letters of Fredrik Part – 2, Page - 464

[11] Ed. Frank S. Mead, Encyclopedia of Religious Questions- Page- 369

मानव के सदाचार की शीत वायु पाकर ही धर्म का दिव्यजल आकाश से पृथ्वी तल तक आया करता है। यह धर्म बहुत ही सूक्ष्म, नित्य, व्यापक तथा देश काल में सर्वत्र विद्यमान महानीय भाव है। इसी की पूर्णतम सशक्त अभिव्यक्ति मानव का अध्यात्म जीवन, नैतिक जीवन और सदाचार पर प्रतिष्ठित सांस्कृतिक जीवन है। प्रत्येक आचार्य, सिद्ध, ज्ञानी, ऋषि, बुद्ध, महात्मा, तीर्थकर, महामानव इसी नित्य धर्म–तत्त्व को जीवन में प्रत्यक्ष अनुभूत करता है और उसका धर्ममय जीवन ही पथप्रदीप बनता है। शुद्ध धर्म तत्त्व सम्प्रदायों की क्षुद्र सीमाओं में कैद नहीं होता, वह तो उन सब में अभिव्यक्त रहता है। जिस प्रकार आकाशचारी मेघों का अमृत जल पृथ्वी के स्वच्छ सरोवरों में संचित हो जाता है, उसी प्रकार धर्म तत्त्व के भाव मानव मन में पहले अप्रत्यक्ष रूप में आते हैं और उसी शक्ति से भौतिक जीवन में अवतीर्ण होते हैं। 'धर्मान्वेषी सम्प्रदाय' तो सत्य की प्रयोगशालाएँ मात्र हैं। किसी मत अथवा पंथ का अनुयायी बनने –मात्र से व्यक्ति का कल्याण नहीं हो सकता। वह एकांगी गति है। मन, वचन और कर्म में सत्य की एक साथ गति सर्वांगीण गति है। वही सत्य है जो 'त्रिसत्य' हो, अर्थात् जो मन का सत्य है, वही वाणी का सत्य हो और जो मनवाणी का सत्य है वही कर्म का भी सत्य हो। इस प्रकार का सत्य या धर्म विश्व का सच्चा आलोक है। वह विश्वमानव के जीवन का चमकीला प्रकाश है।

इसी 'त्रिसत्य' को जीवन में अपनाते हुए डॉ. ज्ञान सिंह मान ने अपने साहित्य की रचना की है। उन्होंने अपने साहित्य में धर्म के इस सच्चे रूप को अपनाते हुए, धार्मिक –मूल्यों को अपने साहित्य और जीवन में अपनाया।ज्ञान सिंह मान ने जहाँ धार्मिक –मूल्यों में कर्म के महत्त्व, धार्मिक, सद्भाव, धार्मिक उपादेयता को अपनाया, वहीं उन्होंने बाह्यचारों, आडम्बरों, पाखण्डों, अंधविश्वासों तथा मूर्ति–पूजा आदि का विरोध भी किया है ताकि मानव को सच्चे धर्म के रास्ते पर चलाया जा सके। उनके उपन्यासों में व्यक्त धार्मिक – मूल्यों का वर्णन इस प्रकार है –

धर्म एक सार्वभौमिक एवं मौलिक सामाजिक घटना है। धर्म हर समाज में पाया जाता है। जहाँ मानव है वहाँ धर्म है। धर्म की अभिव्यक्ति हर स्थान पर पाई जाती है। हमारे जीवन में धर्म का महत्त्वपूर्ण स्थान है। धर्म मनुष्य की प्रगति के महत्त्वपूर्ण क्षणों में मार्गनिर्देशन करता है। धर्म मानव के भौतिक और आध्यात्मिक जीवन को उन्नत बनाता है, क्योंकि ऐहिक और पारलौकिक सुख–शान्ति एवं समृद्धि के पथ की ओर ले जाने वाला साधन धर्म ही है। इससे मानसिक चेतना भी जागृत होती है। यह मानव को आत्मसंयम और शान्ति से जीवन यापन करन के योग्य बनाता है। सर्वप्रथम मनुष्य गृहधर्म का पालन करता है, उसके पश्चात् अपने मूल धर्म से ऊपर उठने पर, वह विस्तृत धर्म स्थल अर्थात् समाज धर्म में प्रवेश करता है और उससे ऊपर उठने पर लोक धर्म तथा फिर विश्वधर्म का पालन करता है।

"धर्म का मुख्य उद्देश्य मानव को कर्म के लिए प्रेरित करना है। मानव के ज्ञान की सार्थकता भी कर्म में ही है। धर्म द्वारा कर्म –शक्ति की प्रेरणा गीता का मूल संदेश है। मनुष्य सत्य, बुराई, अन्याय और अत्याचार से इसीलिए जूझता है कि विश्व की संचायिका शक्ति सत्य, भलाई, न्याय और सदाचार को समर्थन देती है। इसी निष्ठा और विश्वास से मानव कर्म–क्षेत्र की ओर प्रवृत्त होता है, यही धर्म है।''[12] मानव शरीर का प्रत्येक अंग अपने धर्म का पालन करता है। इसी से धर्म की उपादेयता है। डॉ. ज्ञान सिंह मान ने 'सिमटता सागर' उपन्यास में इसी बात को दिखाया है। उन्होंने दिखाया है कि अदीब धर्म की उपादेयता को किस प्रकार सिद्ध करता है –

"प्रतिबंधों का उद्रेक भावनाओं को छल जाता है। प्रेरणाओं की दुदुन्भि लक्ष्यहीन भावों की सफलता का मार्ग स्पष्ट करती है। परन्तु प्रयास करने पर भी प्राणी का दग्ध अहं शमित नहीं होता। काल की संज्ञा में बद्ध जीवन हर मोड़ पर कष्ट और संवेदना का संदेशवाहक बन जाता है। ऊर्जस्वी पर्वत प्रकृति के सहज ढकार में दम तोड़कर सागर की अतल गहराई में विलीन हो जाता है। परन्तु युग–युग से स्वयं को पूर्ण करने को प्रयत्न–रत यह मन कदाचित् ही अपने अहं से, संघर्ष मुक्त हो जाता है। कैसा निश्चित –सा है यह सृष्टि का विधान।''[13]

"धर्म वह धारणा है, जो अपने जीने के साथ दूसरों को जीने की दिशा दिखाता है। धर्म बाल की भित्ति नहीं, धर्म द्वेष प्रचारक नहीं, धर्म घृणा का द्योतक नहीं, धर्म भेदभाव नहीं सिखाता। धर्म नाम से पवित्रता, श्रेष्ठता एवं एक शाश्वत नियम मानकर दिया गया है। भिन्न–भिन्न सम्प्रदाय चाहे अपनी स्वार्थ की दृष्टि से धर्म का अर्थ और यही क्यों न लगायें किन्तु प्राचीन भारतीय दृष्टिकोण समन्वयवादी होकर 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' वाला रहा है।''[14] डॉ. ज्ञान सिंह मान ने 'सिमटता सागर' में आगे भी यही चित्रित किया है –

"देवताओं ने जिस धरती को इतना पुनीत बनाया था उसे मानव अपनी पंकिल छाया से इतना धूमिल बना देगा, ऐसी कौन कल्पना कर सकता था। देवगण भी क्या सामान्य मानव की भांति हाड़–मांस के भावों के ही प्रतीक नहीं हैं। उन्हें भी क्या अहंगत ईर्ष्या –स्पर्धा सदैव ही युद्ध के लिए प्रेरित नहीं करती रही है। उनका अहं आकाश के भिन्न पिण्डों के ध्वंस का कारण बना है तो इस धरती के मानव का अहं छोटे देशों के विध्वंस की पृष्ठभूमि बना है। तो फिर देव और मानव में अन्तर कैसा? अदीब के नेत्र झुक गए। सामने

[12] डॉ. हेमेन्द्र कुमार पानेरी, स्वातन्त्र्योत्तर, हिन्दी उपन्यास : मूल्य संक्रमण, पृ. 267

[13] डॉ. दिवाकर पाठक, प्रो. हरिमोहन झा (सं.) भारतीय नीतिशास्त्र, पृ. 64

[14] डॉ. ज्ञान सिंह मान, सिमटता सागर, पृ. 17

बैठी प्रेयसी के अन्तराल में झांक पाना मोहक उद्भावना से अधिक कुछ नहीं था। अपने शहर की ओर बढ़ रही उस रेलगाड़ी के प्रत्येक झटके के साथ–साथ मानो उसका अंतराल रह–रह दोलायत हो रहा था।''[15]

इस प्रकार कह सकते हैं कि आधुनिक समय में धर्म मात्र पूजा–पाठ, व्रत, उपासना, उपवास तथा तीर्थस्थान न होकर के, बल्कि व्यापक अर्थ में मानवता का नाम ही धर्म है। कर्त्तव्य, गुण, न्याय, शील, कर्म इत्यादि धर्म के ही अर्थ है। धर्म मनुष्य को उच्च आदर्शों की ओर अग्रसर करता है। इसी से धर्म का महत्त्व है। उसकी उपादेयता है।

आलौकिक सत्ता में आस्था/अनास्था

भारतीय समाज धर्म प्रधान समाज है। यहाँ के लोगों में उस अदृश्य सत्ता के प्रति बहुत बड़ी आस्था है, लेकिन कभी–कभी यह आस्था अनास्था में परिवर्तित हो जाता है।

डॉ. ज्ञान सिंह मान ने अपने सभी उपन्यासों में उस अज्ञात सत्ता के प्रति आस्था प्रकट की है। 'बसन्त चन्द्रिका' उपन्यास में तो विम्मी की ईश्वर की उस आलौकिक शक्ति के प्रति पूर्ण आस्था है –

"हाँ, मैं मंदिर के दीप को निहार रहा हूँ। यह विश्व ही मन्दिर है, मेरा ध्यान ही नन्हा दीप है। कानों के समीप महादेवी वर्मा का गीत गुंजायमान है, तत्क्षण विभुता का शंखनाद पुकार उठता है –

'क्या पूजन क्या अर्जन रे

उस असीम का सुन्दर मंदिर

मेरा लघुतम जीवन रे –।'

कुछ भी तो कहना नहीं है मुझेय भगवान के नाम पर जलते दीप को टुकुर–टुकुर देखना भर है। आँखों में प्रार्थना नहीं, एक थके मादे प्रेमी की कसक है। आहों में आरती का स्वर नहीं, एक वियोग संतप्त प्रणय की गहरी निश्वास है। कुछ भी तो अब सोचने के लिए बाकी नहीं रहा है। अन्धकार को चीर कर नन्हें प्रकाश पुंज उस ओर नहीं पहुंच पायेंगे जहाँ मेरा प्रियतम जा रहा है। मन्दिर का दीप विभु की साक्षी बना उन्मत्त भाव से टिमटिमा रहा है, विभु अपनी ही विभुता की परिसीमा में जकड़ा, अपनी ही संज्ञा से अनभिज्ञ बना.... मैं को न समझ पाने में विफल यह शरीर न जाने किस भटकती महिमा की साक्षी है। किस नींद का कौन–सा स्वप्न, किस सागर की कौन–सी अतृप्त लहर का विफल उच्छ्वास है।

[15] वही, पृ. 20

साँस उखड़ कर भी तो मौत के द्वार तक नहीं पहुंचती। आहों की पतवार भले ही टूट जाये, दर्द का दरिया तो पार नहीं हो पाता। आह! मेरे प्रभु, मेरे जन्म साक्षी, कैसा है तेरा यह नर्तन –नहीं, कुछ भी तो मुझ से कहा नहीं जाता। आँखों से आँसू अपने आप नीचे गिर कर भगवान की आरती बनते चले जाते हैं। मैं अस्थिर हूँ, कमजोर हूँ... जीना क्या इस प्रकार.... सांस, शरीर – सब कुछ जवाब देने लगते हैं और मुझे दहाड़ मार कर अपने ही विश्वास के चरणों में गिर पड़ना है। मस्तक पत्थर से टकरा कर गर्म लहू की धार को मूर्ति के अभिसींचन के लिए दूर तक बहा देता है और मुझे अर्द्ध चेतन सी अवस्था में वहीं गिर पड़ता है।''[16]

'मैली पुतली उजले धागे' उपन्यास में किरण को ईश्वर में पूर्ण विश्वास है। वह सभी कार्य ईश्वर को मानकर करती है।

"चुप रहो, भगवान के लिए शान्त हो जाओ। मैं इस प्रकार विपिन की दृष्टि में गिरकर नहीं मर सकती। उस देवता के भव्य भाल पर कालिमा मढ़कर मैं जन्म–जन्मांतर आन्तरिक दाह से मुक्त नहीं हो सकूँगी। ओ भगवान! ओ मेरे कर्णधार! लौट जाओ, लौट आओ। ओह विपिन... ।"[17]

ईश्वर में आस्था रखने वाले मनुष्य का मन सदैव शुद्ध और चित्ति वृत रहती है। 'अधूरी मूर्तियाँ' उपन्यास में छाया रवि से मंदिर जाने के लिए कहती है और वह जाने के लिए तैयार हो जाता है –

"बाबा, मैं कल शहर नहीं जाऊँगी। रवि बाबू को देवी माँ के मंदिर तक ले जाऊँगी।" "परन्तु बेटी अभी क्या इतनी दूर तक जाना उचित होगा?'' विशाल ने शंका प्रकट करते हुए उत्तर दिया।

"नहीं बाबा, देवी माँ तक चलने में इसे कुछ नहीं होगा। माँ के आशीर्वाद से ही तो रवि अच्छा हो रहा है –''

विशालबाहु ने छाया की बात का उत्तर नहीं दिया और छाया रवि को अपने साथ लेकर देवी माँ के मंदिर में पहुंच गई। एक हाथ छाया के कन्धों पर और दूसरा सहायक लकड़ी पर रखे कवि कब मंदिर के समीप पहुंच गया उसे स्मरण नहीं रहा, छाया के रुकते ही वह भी रुक गया। छाया ने उसे एक बड़ी–सी शिला पर बैठने में सहायता देते हुए कहा – "रवि बाबू, तुम यहीं बैठो। मैं ऊपर माँ को नमस्कार करके लौट आती

[16] डॉ. ज्ञान सिंह मान, बसन्त चन्द्रिका, पृ. 84–85

[17] वही, मैली पुतली, उजले धागे, पृ. 127

हूँ। मंदिर अभी तुम्हारे लिए ऊँचा पड़ेगा। बहुत–सी सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ेंगी। मैं माँ का आशीर्वाद लेकर अभी लौट आऊँगी।''[18]

'काले पर्वत गोरे पंख' उपन्यास में विम्मी, बिन्नी को ही अपना अराध्य मान लेती है और उसकी उपासना करने के लिए तैयार हो जाती है –

"विम्मी को गहरी श्वास लेनी है, आन्तरिक आर्द्रता को ओर छोर में व्याप्त हल्की शीत का पथ पाना है, वैसी आत्मनिरत दृष्टि, वैसा ही विश्वस्त वीणा वादन–लगता है उस गोपनीय ब्रह्म वाक्य ने समूचे ब्रह्माण्ड को वशीभूत कर लिया है। विम्मी का कहना है –

"बन्नी, तुम ही मेरे तपस्वी शिव हो, मुझे छोड़ अलग से अपने योग में कैसे स्थिर हो पाओगे? नहीं, नहीं–मेरे आराध्य, मेरे ईश–तुम से जुदा रहने का अभिशाप मैं युग–युग से झेल रही हूँ, तुम से जुड़ने का दुःख भी क्या मुझे... आकाश में भटकती इस गंगा को अपनी जटाओं का विश्वास दो, बन्नी... गंगा के अभाव में शिव सार्थक कैसे हो पाएगा? हाँ बन्नी, इस गंगा के लिए, इस स्नेह और इस अभिव्यंजना के लिए, तुम्हें फिर से जीवन में लौटना है, जीवन को पाना है, मेरे लिए, सिर्फ मेरे लिए...बन्नी।''[19]

कई बार मनुष्य अपने स्वार्थवश होकर ईश्वर के प्रति अनास्था प्रकट करता है। लेकिन वह दुःख के समय में फिर ईश्वर में आस्था करने लगता है। 'बसन्त चन्द्रिका' और 'काले पर्वत गोरे पंख' उपन्यास में यही चित्रित किया गया है –

'वन्नी ! तुम उसे बहुत मानते हो न?'

मेरे प्रांगण से कुछ ही दूर है वह घर जिसे भगवान का मंदिर कहते हैं। संकेत समझ से परे नहीं है। मुझे तत्क्षण मंदिर की ओर देखना है। विम्मी का आशय स्पष्ट करना है, क्या उसे मुझ पर संदेह है या मेरे ईश्वर पर... वह अपने प्रति शंकित है या फिर स्रष्टा के लिए उसके मन में। मेरे नेत्र झुक आते हैं शायद निजी असमर्थता की थाह पाने के लिए। आस्था और अनास्था के बीच दोलायित मेरा मन अपने आप को काट –काट जाता है। विम्मी का फिर से कहना है, व्यंग्य या उपालम्भ.... भर्त्सना या प्रार्थना... कुछ भी कहना कठिन है। जो व्यक्ति स्वयं तैरने की कला से अनभिज्ञ है वह भला दूसरे को गहरे से कैसे बाहर ला सकता है। विम्मी रो सी उठती है –

[18] डॉ. ज्ञान सिंह मान, अधूरी मूर्तियाँ, पृ. 2

[19] वही, काले पर्वत गोरे पंख, पृ. 91

"इसी के सामने वे मुझे तुम से लूट कर, छीन कर ले जायेंगे, बन्नी–आ–हा–हा।''[20]

मनुष्य जब अधिक उदास होता है और चारों ओर से उसे निराशा ही हाथ लगती है, तब वह उस आलौकिक शक्ति को मानने से इंकार कर देता है –

"क्या उसे मुझ पर संदेह है या मेरे ईश्वर पर.... वह अपने प्रति शंकित है या फिर स्रष्टा के लिए उसके मन में... मेरे नेत्र झुक आते हैं। शायद निजी असमर्थता की थाह पाने के लिए। आस्था और अनास्था के बीच दोलायित मेरा मन अपने आपको काट–काट जाता है। विम्मी को फिर से कहना है, व्यंग्य या उपालम्भ.... भर्त्सना या प्रार्थना... कुछ भी कहना कठिन है। मैं यह भी कह सकता हूँ। जो व्यक्ति स्वयं तैरने की कला से अनभिज्ञ है वह भला दूसरे को गहरे से कैसे बाहर ला सकता है। विम्मी रो सी उठती है।''[21]

कर्म का महत्त्व

भारतीय जीवन पद्धति में कर्म का विशेष महत्त्व है, जिसके अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्मों के प्रति उत्तरदायी माना जाता है। शुभ कर्म करने वाले की शुभ गति एवं अशुभ कर्म करने वाले की अशुभ गति होती है। कर्म–सम्बन्धी यह सिद्धान्त नैतिकता के लिए उपयोगी है और धार्मिक –मूल्यों की रीढ़ है। भारतीय जनजीवन में प्रचलित इस चिरन्तन, कर्मवाद का प्रभाव लेखक डॉ. ज्ञान सिंह मान पर भी पड़ा है। डॉ. 'मान' इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि व्यक्ति जैसा कर्म करता है, उसी के अनुरूप उसे फल की प्राप्ति होती है। कर्मों की गति अक्षुण्ण है इसीलिए व्यक्ति को सदैव शुभकर्म करने का प्रयास करना चाहिए – "और अमर को लगा समस्त ब्रह्माण्ड एकबारगी धुरीविहीन चाक पर घूम गया है। न कुछ आगे दृश्यमान है और न कुछ पीछे, अतीत अपने रहस्यमय परख समेट गया है तो भविष्य अपने विचित्र वैभव में लुप्त हो गया है, वर्तमान एक गहरे कूप की भांति उसके अन्तश्चेतन में समा गया है। इसी गहन कूप को ढांपने के लिए धूमिल अस्पष्ट एवं उद्वेलित भावोंदधि की भयंकर परिकल्पना! उल्लास–तरंगों की करवट में प्रतिपल गंभीर होता जल का विशालकाय भंवर, भंवर के साथ–साथ घूमते, बनते और मिटते अमर के संचित एवं प्रारब्ध कर्म –हाँ दूर तक फैले भंवर पर कर्म–कांड ही तो गोलाकार प्रहार भरता जा रहा था। लगता था विश्व की समस्त सम्पदा को, वेदना को, ममता को, दर्शन एवं विकास को केवल उसी बिन्दु–विहीन भंवर पर घूम जाना है, बिना सोचे और बिना समझे, हाँ, अमर भी इस कर्म–रूपी गहरे भंवर पर प्रतिक्षण ढलते, बढ़ते, प्रसुप्त भाव में छटते तथा आलोक –किरण में उठते–तड़पते आत्म–बिन्दु की भांति ठहर –ठहर जा रहा था। भंवर की भीमकाय भुजाओं में प्रतिक्षण फैलता मानव के आन्तरिक अहं का फेनिल उच्छ्वास उसी उच्छ्वास

[20] डॉ. ज्ञान सिंह मान, बसंत चन्द्रिका, पृ. 82

[21] डॉ. ज्ञान सिंह मान, काले पर्वत गोरे पंख, पृ. 96

की गहनता में मिटता–बढ़ता जीव –बिन्दु का रहस्यमय नर्तन। कैसा विचित्र है यह मायिक प्रसार –भंवर चलता चला जा रहा है, शारीरिक घटन–विघटन वायु–प्रवाह के साथ–साथ बढ़ने और अपने में सिमटने की प्रक्रिया से उद्वेलित है, कर्मगति अपने प्रवाह पर पूरी उतर रही है किन्तु किसी भी स्वरूप पर, किसी भी चक्र पर, किसी भी गोलाकार नृतन पर तो विद्यमान नहीं है। लगता है कर्मचक्र को बिना किसी सशक्त धुरी के ही दौड़ते जाना है, परन्तु नहीं –भंवर की निजता किसी–न–किसी तीखे बिन्दु पर तो आधारित है ही।''[22]

डॉ. ज्ञान सिंह मान ने 'बसन्त चन्द्रिका' उपन्यास में बताया है कि मनुष्य को केवल कर्म करना चाहिए फल की चिन्ता नहीं करनी चाहिए तथा मनुष्य सदैव इस धरती पर रहने के लिए नहीं आया है –

"विम्मी, यहाँ किसी को भी हमेशा नहीं बने रहना है। काल की शुष्क रेत पर पद चिन्ह बनते–मिटते रहते हैं। आना–जाना बहुत कुछ पूर्व निर्धारित स्वीकार कर लिया जाता है। इस पर भी हर प्राणी विशाल मरुस्थल के किसी कल्पित चौराहे पर मील –पत्थर की तरह खड़ा रहना चाहता है, परन्तु क्यों? सम्भवतः इसीलिए कि हम सभी अपने अपने 'स्व' को, अपने अस्तित्व को कोई स्थायी अर्थ प्रदान करना चाहते हैं। जीवन चाहे समाप्त हो जाए, किन्तु शरीर के बाद भी हमारा कुछ न कुछ बाकी बचा रहे, क्या इसीलिए इस क्षणिक वैभव का पुतला मानव हर बाध्य स्थिति को अपने ही वास्तव में ढालने की मोहक परिकल्पना नहीं जुटाता है ?''

भावात्मक उछलन अब शायद मुझे रुला देगी। गीली आँखें छलक भी जायेंगी तो क्या होगा? विम्मी मेरे लिए कोई गैर तो नहीं है, उसने शायद मुझे कभी इस रूप में स्वीकार न किया हो। मेरे लिए तो वह..., सांसों को पुनः व्यवस्थित करके कहना है मुझे –

"विम्मी, मेरे मन की स्थिति भला तुम कैसे जान पाओगी? तुम नहीं जानती मैं तुम्हें किस–किस रूप में देखता आया हूँ। लगता है मेरे अन्तराल में तुम्हारे लिए जो आकर्षण है वह आदि पुरुष की प्रकृति के लिए कामना का ही एक रूप है। कई युगों से मैं तुम्हें इस प्रकार देखता आया हूँ, हर क्षण मेरा बनना और मिटना तुम्हारी प्रतीक्षा में ही था। अब भी इतनी दूर आने पर, कह नहीं सकता तुम्हें कब से देखता आया हूँ जब जब समय पाता हूँ तुम्हारे पास होकर अपने अतृप्त नेत्रों की मोहक आकंक्षा पूरी कर लेता हूँ। तुम नहीं जानती, कितने युग मैंने इसी प्रकार एकान्त में तुम्हारे ही कल्लित मनोभावों के परिचय में व्यतीत कर दिये हैं।''

[22] डॉ. ज्ञान सिंह मान, बिन्दु और भंवर, पृ. 153

कहते कहते पुनः मैं उसकी ओर देखता हूँ, उसके उन्नत भाल पर विस्मृत भाव भंगिमा विचित्र सी अस्पष्टता छोड़ रही है। चेहरे का रंग प्रतिक्षण इन्द्रधनुषीय झलक में बन मिट रहा है। सब कुछ उसे ध्यानपूर्वक ही सुनना है, उसका अपना महत्त्व और –''[23]

'अधूरी मूर्तियाँ' उपन्यास में भी इसी तथ्य को प्रतिपादित किया गया है –

"नहीं बाबा, ऐसा कह कर मुझे लज्जित मत करो। आप लोगों के पावन वरदान से तो मैं इस नये जीवन में प्रवेश पा सका हूँ। आप लोगों की सेवा पर सन्देह करना अपने लिये नरक का सामान जुटाने के बराबर है, परन्तु बाबा–''

रवि ने साँस रोककर कहा –

"कब तक मैं अकर्मण्य बैठा रहूँगा? मुझे कुछ तो करना ही चाहिए। बाह्य कर्म के अभाव में क्या हमारा यह शरीर स्थिर रह सकता है ? फिर कर्म से विमुख होकर तो मुझे आन्तरिक शान्ति कहीं भी नहीं मिल सकती? आप लोगों से पूजा पाकर भी यदि मेरी अन्तरात्मा मुझे कचोटती रही तो इस वरदान का क्या लाभ होगा, बाबा? आप लोगों की सेवा पर अविश्वास के कारण नहीं अपितु अपने ही आन्तरिक परितोष के लिए मुझे कुछ करना होगा। तुम मुझे मूर्ति कला नहीं सिखाना चाहते न सही, परन्तु इधर कोई दूसरी कला भी तो नहीं है जिसे सीख कर मैं अपने भविष्य को निश्चित कर पाऊँ। मेरी विवशता तुम भली प्रकार जानते हो बाबा, मैं तो प्रेममय अनुरोध ही कर सकता हूँ। निर्णय तो आप लोगों के हाथ में ही है।''[24]

डॉ. ज्ञान सिंह मान के अनुसार मनुष्य अपने कर्मों का फल ही भोगता है। वह पृथ्वी पर आता है, कर्म करता है और चला जाता है। इसीलिए मानव श्रेष्ठ है –

"मेरी आँखों का उपचार हो रहा है, कौन जानता है मुझे फिर से नयन ज्याति मिल सकेगी अथवा नहीं। यदि विधाता वाम रहे और मैं कभी इस विश्व को देखने के योग्य न हो पाया तो इस शरीर का बोझ कैसे उठा पाऊँगा? कब तक मुझे औरों के द्वारा संचित कर्मों से अपना भविष्य संवारना होगा? तुम्हारे साथ थोड़ा–बहुत काम करने से मैं यह कला एक नहीं तो दो वर्षों में तो सीख ही लूँगा–फिर यदि मेरी आँखों का प्रकाश लौट भी आया तो क्या मैं इस कला की निष्काम उपासना नहीं कर सकता? बोलो – बाबा।" रवि के शब्दों को सुन कर विशाल बाहु क्षण भर के लिए निश्चेष्ट अवस्था में बैठा रहा। सम्भवतः वह रवि के शब्दों में सार्थकता खोजने का प्रयास कर रहा था। रवि ने जो कुछ कहा वह व्यावहारिक दृष्टि से बिल्कुल सत्य था।

[23] डॉ. ज्ञान सिंह मान, बसन्त चन्द्रिका, पृ. 60–61

[24] डॉ. ज्ञान सिंह मान, अधूरी मूर्तियां, पृ. 74

इसे अपने अच्छे जीवन को सुगम बनाने के लिए तथा अपने निरुद्देश्य जीवन को निश्चित दिशा प्रदान करने के लिए कुछ तो करना ही था।''[25]

प्रत्येक व्यक्ति को कर्म से इस सिद्धान्त के प्रति आस्था रखनी चाहिए, क्योंकि शुभ–अशुभ कर्मों का यथातथ्य फल असंदिग्ध रूप में मिलता है, वह पुनः उसी प्रकार लौट जाता है। अंततः उसके कर्म ही शेष रह जाते हैं। 'बसन्त चन्द्रिका' में यही चित्रित किया गया है –

"जीवन का हर क्षण चलायमान है। चाहा अनचाहा कुछ भी पूर्ववत् नहीं रहता। ज्ञानी सब स्थितियों को सुगमता से आत्मसात् करता हुआ वस्तु निष्ठता में भी सत्य पा लेता है। सांसारिक मायिक प्रवंचना के जीवों के लिए अपनी निजता को तिल तिल काट कर भी पिपासित ही रह जाना है।

चंद्रिका के दूर हटते ही मन उद्विग्न हो उठता है। चिरसंचित भाव और विश्वास क्षण में ही विकेन्द्रित हो जाते हैं। स्वप्निल मोहक उदभावना से रंचित मायिक प्रसार छिन्न–भिन्न हो उठता है। सामीप्य इतनी शीघ्र वैराग्य और आन्तरिक विषाद में परिवर्तित हो जायेगा, ऐसी कल्पना नहीं थी।''[26]

इस प्रकार डॉ. मान कहते हैं कि मानव का धर्म अपने कर्म को करना है। कर्म भी वह जो किसी का भला कर सके। ऐसा करके ही मानव धार्मिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों को जीवित रख सकता है। लेखक कहता है कि व्यक्ति को जीवन की क्षण भंगुरता को देखते हुए शुभ कर्मों में प्रवृत्त होना चाहिए। मनुष्य का जीवन नश्वर है। अतः उसे इस प्रकार के कर्म करने चाहिए जिनसे उसका यश चारों तरफ फैले।

रूढ़ियों और मान्यताओं का विरोध

आज का युग विज्ञान का युग है जिसमें रूढ़ि और जर्जर मान्यताओं के लिए कोई स्थान नहीं है। लेकिन हमारा समाज आज भी मिथ्याडम्बरों में जकड़ा हुआ है। कुछ धार्मिक लोग धर्म का गलत प्रचार केवल अपने तुच्छ स्वार्थ के लिए करते हैं, क्योंकि इससे उनकी रोजी–रोटी चलती रहती है। अगर लोग धर्म के वास्तविक अर्थ को समझ जाएँ तो भला इन धर्म के ठेकेदारों को कौन पूछे। इसलिए तो ये लोग गलत प्रचार करते हैं और धार्मिक मूल्यों का हास करते हैं जो कि समाज की प्रगति में भी बाधक होते हैं।

लेखक डॉ. ज्ञान सिंह मान अपने समय के सजग साहित्यकार हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से समाज और धर्म में फैली बाह्य विकृतियों को समाप्त करने का प्रयत्न किया है। 'एक रथ छह पहिए' में व्यक्तिगत मान्यताओं और रूढ़ियों को तिलांजलि दी गई है –

[25] डॉ. ज्ञान सिंह मान, अधूरी मूर्तियाँ, पृ. 73

[26] वही, बसंत चन्द्रिका, पृ. 50

"मैं तुम्हारी तरह तर्क नहीं कर सकता। तुम फिलास्फर हो और मैं एक वकील। भावना –क्षेत्र मुझसे कोसों दूर है। तुम्हारे साथ कोरा तथ्य लेकर बात करूँ यह भी सम्भव नहीं है। मेरे साथ जहाँ भी लघु का प्रश्न आता है, मुझे भावुक बनना ही पड़ता है – ''

'परन्तु विजय, मेरे संस्कार –एक गुरु के विश्वास –'

'सुना, विनय –' विजय ने कुछ गंभीर होकर कहा –

'मैं जानता हूँ कि तुम एक अच्छे डिबेटर हो, मुझसे भी अधिक छटादार तर्क कर सकते हो, परन्तु क्या बाल की खाल उतारते रहने से हम किसी भी निर्णय तक पहुंच पायेंगे। व्यक्तिगत मान्यताओं को तिलांजलि देकर भी हमें कभी औरों के प्रति न्याय करना पड़ता है –'

'विजय, तुम जानते हो, मैंने कभी तुम्हारी किसी बात को टालने का साहस नहीं किया। आजीवन मैंने जो सम्मान तुम्हें दिया है, सम्भवतः किसी और को न दे पाऊँ, परन्तु डीयर, बहुत कुछ ऐसी धारणाएँ होती हैं जिन्हें चाहते हुए भी हम त्याग नहीं सकते।'

मधु के हाथ जैसे कम्पायमान हो गए। कार जैसे कुछ तिरछी टेड़ी होकर चलने लगी। क्या विनय के हृदय में उसके लिए तनिक भी स्थान नहीं है ? उसने स्वयं से पूछा। 'परन्तु क्यों! वह इतनी बुरी तो नहीं है ?' सहसा मधु ने स्टीयरिंग के मध्य लगे हुए चमकदार पदार्थ में अपना चेहरा देखा, वह तो जैसे मधु थी ही नहीं। उसका हृदय विषाद की हल्की छाया में सिमटने लगा। विजय ने कुछ सोचकर फिर कहा –

'विनय, कोई छोटी–मोटी बात होती तो मैं अनाधिकार चेष्टा करके भी तुम्हें मना लेता, मार–पीट करके तुम्हें अपनी राह पर ले आता। परन्तु प्रस्तुत प्रश्न किसी जीवन–मृत्यु से सम्बन्धित है। इसके लिए मैं बलपूर्वक नहीं, विनयपूर्वक ही कह सकता हूँ।'

पुनः वह विनय का हाथ अपने हाथों में लेकर बोला –

'सुनो, मेरे किंचित् से दुःख से क्या तुम्हें भी ठेस नहीं पहुंचेगी? गुरु–शिष्या का सम्पर्क उसी अवस्था में स्वीकार्य है, जब दोनों ही ओर इस सम्बन्ध को मान्यता देने वाले हों। हमारे संस्कार क्या हमारे अपने ही विधि–विधान नहीं हैं ? इस संसार में सबसे बड़ी समस्या है दृष्टिकोण की, व्यक्तिगत विश्वास–अविश्वास की–आस्था की। अदृश्य सत्ता के प्रति आस्था रखने से ही क्या उसका अस्तित्व असंदिग्ध हो जाता है ?

हमारा ईश्वर क्या हमसे भिन्न धर्मियों के लिए क्या शैतान की परिभाषा नहीं रखता, तो कुछ जातिगत संस्कार है, क्या वे केवल एक तरफा नहीं हैं ?''[27]

आज के युवा अपने प्रेम को पाने के लिए पुरानी मान्यताओं और रीति–रिवाजों को तोड़ रहे हैं। 'मृग तृष्णा' में यही चित्रित किया गया है –

"धीमी झंकार में झंकृत होता सुनाई पड़ने लगता था। रेखा के जी में आया कि वह उसी समय समस्त परम्परागत संस्कारों का परित्याग करके अपने प्रियतम के पास भाग जाए और अपना सीना चीर कर उसे कहे, देखो अजय, इस मन्दिर में आज भी तुम्हारी ही प्रतिमा विराजमान है –' परन्तु तत्क्षण उसे अनुभव होता कि वह तो हिंसा मुंह फाड़े भयावह मर्यादा तथा पारिवारिक बन्धनों में जकड़ी एक निपट, निरीह एवं असहाय नारी मात्र है। तो क्या मुझे जीवन पर्यन्त आन्तरिक वेदना से मुक्ति प्राप्त नही होगी?' रेखा ने कुर्सी पर लेट कर नेत्र बंद कर लिए 'क्या मेरा विगत सदैव एक मगर की भाँति हड्डियां में मेरा माँस नोचता रहेगा?' असीम वेदना के कारण रेखा का उपचेतन मन जैसे आन्दोलित हो उठा।"[28]

प्रस्तुत उपन्यास में ही रेखा अजय से विवाह करने के लिए सभी सामाजिक संस्कारों और मान्यताओं को तोड़ने के लिए तैयार हैं –

"विवाह के लिए क्या समस्त सामाजिक संस्कारों और मान्यताओं का परित्याग कर दोगी। माता–पिता की मर्यादा को भस्मीभूत कर दोगी।' अजय की आवाज गंभीर हो रही थी।

'हाँ अजय, मैं ऐसा करूँगी। मैंने तुमको प्राप्त करने का निश्चय कर लिया है। मार्ग की कोई बाधा मुझे मेरे लक्ष्य को दूर नहीं रख सकती।' फिर वह सहसा उठ कर खड़ी हो गई। अजय के पैरों की ओर झुकती हुई बोली –

'नारी का सर्वस्व पुरुष के चरणों में ही है। सामाजिक मान्यताओं का अपना मूल्य है, परन्तु अजय भावना लोक के अलग अपने विचित्र ही नियम है। तुम्हारे लिए मैं सबको छोड़ दूंगी। मैंने पाना हैं तुम्हें, केवल तुम्हें और तुम्हें कैसे भी हो।''[29]

Improving Skillset
Takshila Journal of Research

इस प्रकार डॉ. मान ने रूढ़ियों, सामाजिक मान्यताओं का विरोध किया है। उनका विरोध किसी धर्म या सम्प्रदाय से नहीं है बल्कि उन ठेकेदारों से है जो स्वयं तो अंधे हैं ही साथ समाज के अन्य लोगों को भी

[27] डॉ. ज्ञान सिंह मान, एक रथ छह पहिए, पृ. 53

[28] डॉ. ज्ञान सिंह मान, मृगतृष्णा, पृ. 147

[29] वही, पृ. 137

धोखा दे रहे हैं। वे कैसे मनुष्य को सच्चे धर्म का रास्ता दिखा सकती है। सच्चा धर्म तो मानव को त्याग तथा परोपकर की शिक्षा देता है, किसी की बलि नहीं मांगता। इसलिए हमें हीनता की भावना से ग्रस्त रूढ़ियों को छोड़कर समय की आवश्यकता के अनुसार सच्चे धर्म को अपना कर धार्मिक मूल्यों का उत्थान करना चाहिए ताकि समस्त मानव जाति में प्रेम की भावना बढ़े।

पाखण्ड का विरोध

आज के समाज में पारखण्ड का बोलबाला है। धर्म के ठेकेदारों ने आडम्बरों को बढ़ावा दिया है, जिससे धर्म का सच्चा रूप ही विलुप्त हो गया और उसके स्थान पर आडम्बर, बाह्यचार आदि आ गए। इसका परिणाम यह हुआ कि धार्मिक मूल्य कहीं दूर गुफाओं में जाकर रहने लगे।

डॉ. ज्ञान सिंह मान ने बाह्याडम्बरों का विरोध अपने उपन्यास 'मैली पुतली उजले धागे' में किया है –

"रमा देवी की कोख में किरण के रूप में उद्दीप्त हो उठी। सिद्ध बाबा ने आशीर्वाद देते हुए जो कहा था, वह भी दम्पत्ति के कानों में गूंज रहा था। सन्तान का वरदान देकर उस 'करनी वाले' ने कहा – "देखो, जो वरदान आप को दिया गया है, वह आपके पूर्व –संचित कर्मों के अनुसार नहीं है। इसे हमारी तपस्या का पुण्य ही समझो। सुनो ब्रजमोहन – '' सिद्ध बाबा के नेत्र अंगार की भांति धधक उठे –

"अपने मन में दूसरे विवाह की कल्पना तक नहीं लाना। दस विवाह रचाकर भी तुम हमारी कृपा के बिना सन्तान–सुख नहीं पा सकोगे –''

कहते–कहते सिद्ध बाबा ने आँखें मूंद ली। ब्रजमोहन सिहर उठा। रमा देवी आतंकित हो उठी। ब्रजमोहन हाथ जोड़ते हुए बोले –

''बाबा हम जन्म–जन्मान्तर तक आपके आभारी रहेंगे। इतना बड़ा घर सन्तान के बिना – '' सिद्ध बाबा के रहस्यमय नेत्र खुले। उन्होंने राख की ढेरी की ओर देखते हुए कहा– "आपको कन्या का वरदान दिया जा रहा है, परन्तु स्मरण रहे उस बच्ची को कभी व्यथित नहीं करना। यदि उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई पग उठाया गया तो – ?''

'नहीं महात्मा जी', रमादेवी ने नतमस्तक होकर कहा, "हम उस कन्या को अपने से भी अधिक संभाल कर रखेंगे। आपका आशीर्वाद हमारे वंश को नया जीवन देगा–"

'सुनो –' सिद्ध बाबा ने हाथ उठाया और कहा – 'हमारे वरदान के प्रति तुम्हारे मन में कभी सन्देह न आने पाये। उसके लिए हम पहले से ही बता देना चाहेंगे कि उस कन्या के कण्ठ में सबको मुग्ध करने वाली

सरस वाणी निवास करेगी। अपनी सुन्दरता से वह जहाँ भी जायेगी, विशिष्ट सम्मान पायेगी। सब कुछ उसे मिलेगा परन्तु –'

एकान्त एवं निर्जन–से पर्वत पर समाधिस्थ वह बाबा सहसा मौन हो गया। ब्रजमोहन और उसकी पत्नी की साँस क्षणभर के लिए रुक गई। पति ने पत्नी की ओर तथा पत्नी ने सिद्ध बाबा के चरणों में जल रही लकड़ी की ओर देखा। सिद्ध बाबा ने साँस भरी, अग्नि की लपटें ऊपर उठने लगीं। आग की रोशनी में वह दिव्य रूप और भी ज्वलन्त हो उठा, पति–पत्नी की ओर अर्थभरी दृष्टि से देखकर सिद्ध बाबा पुनः अपनी समाधि में खो गए।''[30]

इस प्रकार लेखक ने आडम्बरों का वर्णन करके तथा उनका विरोध दिखाकर हमें यह संदेश देना चाहा है कि चाहे वह साधारण हो या योगी हो, उसे मिथ्याडम्बरों से निकलकर सच्ची दुनिया में जीवन बिताना चाहिए तथा अपने–अपने कर्म एवं धर्म का ईमानदारी से पालन करना चाहिए ताकि धार्मिक मूल्य के अन्दर समाहित हो सकें।

मूर्ति पूजा का वर्णन

डॉ. ज्ञान सिंह मान ने मूर्ति –पूजा का वर्णन अपने बहुत से उपन्यासों में किया है। वे भगवान के निराकार और साकार दोनों रूपों में विश्वास करते हैं।

'दीमक और दायरे' उपन्यास में मुक्ताबाई और माधवी को मूर्ति–पूजा करते हुए चित्रित किया गया है –

"हवेली से कुछ दूर एक प्राचीन मंदिर था। जमींदार घराने की हर बहू प्रत्येक पूर्णिमा को वहाँ गौरी पूजन के लिए जाया करती है। मुक्ता बाई जब से जमींदार घराने की शोभा बन कर वहाँ आयी, तभी से वह प्रत्येक पूर्णिमा को उस मंदिर में जाया करती थी। वह भगवान का द्वार था, देवी माँ के प्रताप का सुन्दर भवन था। वहाँ तो किसी प्रकार का बन्धन नहीं था। कोई भी वहाँ आ जा सकता था। मुक्ताबाई को ठीक से स्मरण नहीं, हरपाल के विवाह के दो वर्ष पश्चात् की बात होगी। मुक्ताबाई माधवी को उस मंदिर में देख कर ठिठक गई। उसने उस विदा की रात माधवी को केवल कुछ क्षणों के लिए ही देखा था और वह भी अंधेरे में। अतः वह उसे ठीक से पहचान न सकी। पूर्णिमा की रात को गांव की अन्य स्त्रियाँ भी पूजन के लिए आया करती थीं। मुक्ता बाई लगभग सभी को जानती थी। परन्तु माधवी को देख कर तो उसे सहसा रुकना पड़ा। उस ने विस्मित होकर अपनी दासी की ओर देखा। मुक्ताबाई सम्भवतः उससे कुछ पूछना चाहती थी? इससे पूर्व कि मुक्त बाई दासी से कुछ पूछती, माधवी ने एक उच्च कुलीना की भान्ति अपने

[30] डॉ. ज्ञान सिंह मान, मैली पुतली उजले धागे, पृ. 30 –31

मस्तक को ढांप कर मुक्ता बाई के चरण स्पर्श किये और पीछे हट गई। दूसरी स्त्रियों ने भी मुक्ता बाई के पैर छू कर आशीर्वाद पाया। वास्तव में यह प्रथा चिरकाल से उस मंदिर का शृंगार थी। पूर्णिमा को जो भी स्त्री मंदिर में आती रानी माँ का आशीर्वाद पाये बिना न लौटती। पूजन के उपरान्त सभी ग्राम वधुएँ अपनी रानी के आगे अपना–अपना दुःख–सुख कहतीं। रानी मुक्ता बाई उन्हें हर सहायता का आश्वासन देती और... .. ।''[31]

'अधूरी मूर्तियाँ' उपन्यास में विशालबाहु रवि को बताता है कि किस प्रकार उसकी पत्नी ने छाया को प्राप्त करने के लिए मन्दिर में देवी माँ की पूजा की है –

'यह तुम क्या कहते हो?'

'हाँ, रवि–आओ, मैं तुम्हें सब कुछ बताता हूँ– " उसी प्रकार रवि के कन्धों पर हाथ रखे विशाल बाहु उसे बाहरी कक्ष में ले आया। रवि के अन्तर्मन में एक विचित्र –सी हलचल उत्पन्न हो गई। छाया का रहस्यमय व्यक्तित्व उसके अंतरताल में एक अद्‌भुत कसक उत्पन्न कर गया। कक्ष के बाहर आकर विशाल बाहु ने रवि को ठीक से बिठाते हुए कहा –

"बेटा, छाया को मैंने और मेरी पत्नी ने इक्कीस दिन उपवास करने के उपरान्त देवी माँ से वरदान रूप में प्राप्त किया है। तुम तो जानते ही हो कि छाया मेरी इकलौती सन्तान है। अभी यह हुई नहीं थी कि मंदिर के वृद्ध पुजारी ने हमें सन्तान पाने के लिए देवी माँ की आराधना करने के लिए कहा। उपवास अवधि पूर्ण होने पर देवी माँ ने मेरी पत्नी को स्वप्न में दर्शन दिये और हमारा आँगन छाया की मधुर किलकारियों से गूंज उठा–''[32]

'दीमक और दायरे' उपन्यास में मुक्ताबाई की देवी माँ के प्रति गहरी आस्था है –

''मुक्ताबाई का चित्त उदास हो गया। क्या माधवी ने उसके मनोभावों की थाह पा ली है ? क्या वह सचमुच स्वयं को हीन और दीन समझने लगी है? मुक्ताबाई असमंजस में पड़ गई। पूरे चार सप्ताह वह स्वयं से लड़ती–झगड़ती रही। इस बार पूर्णिमा को वह माधवी से अवश्यमेव मिलेगी। आगामी पूर्णिमा को मुक्ताबाई भी सूर्य ढले ही मन्दिर में पहुंच गई। उस समय माधवी देवी माँ की प्रतिमा को नमस्कार कर रही थी। मुक्ताबाई मंदिर के सिंह–द्वार के समीप खड़ी हो कर उसके लौटने की प्रतीक्षा करने लगी। उस समय मंदिर

[31] डॉ. ज्ञान सिंह मान, दीमक और दायरे, पृ. 142 –143

[32] वही, अधूरी मूर्तियाँ, पृ. 90

में विशेष रौनक नहीं थी। मुक्ता बाई अपनी दासी के सम्मुख माधवी से कुछ कहना –सुनना नहीं चाहती थी। अतः उसने दासी को किसी आवश्यक काम से कहीं अन्यत्र भेज दिया।''[33]

आज के वैज्ञानिक युग में मूर्ति पूजा का विरोध किया जाता है। लेकिन देवताओं के साकार रूप की पूजा करने से चित्त को शान्ति मिलती है। इससे मानवीय संस्कारों का शोधन भी होता है।

बाह्याडम्बरों एवं अंधविश्वासों का विरोध

अपने समाज की विकृत अवस्था को देखकर डॉ. ज्ञान सिंह मान के अंतराल में प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई और इसके फलस्वरूप वे अपने उपन्यासों में सामाजिक एवं धार्मिक मूल्यों को सजाने में सफल हुए हैं। इन्होंने समाज में व्याप्त आसुरी वृत्ति के उन्मूलन का पूर्ण प्रयास किया। इन्होंने अपने समय में समाज के विकीर्ण विचारों को समझा, परखा तथा अपने उपन्यासों में पूर्ण साहस के साथ उन्हें प्रकाशित किया। यही कारण है कि उनके उपन्यासों में एक ऐसी नवीन जन–चेतना व्यक्त हुई जिसमें एक नए सामाजिक संगठन की मांग है। डॉ. ज्ञान सिंह मान ने समस्त आडम्बरों और अंधविश्वासों को जड़ से उखाड़ फैंकने का प्रयास किया है, क्योंकि अंधविश्वासों एवं आडम्बरों से समाज में स्थायी सुख–शान्ति और समृद्धि नहीं आ सकती तथा धार्मिक मूल्यों का उत्कर्ष नहीं हो सकता। निःसंदेह धर्म के समुचित परिपालन के लिए किन्हीं आचारों एवं विधि–विधानों की आवश्यकता होती है, परन्तु धर्म में केवल सात्विक आचारों को महत्व दिया जाना चाहिए। जबकि आज के युग में धर्म के सभी आचार तामसिक व रजोगुणी हो गए हैं और जनता मिथ्याचारों को ही धर्म समझने लगी है।

डॉ. ज्ञान सिंह मान के विचारानुसार धर्म के नाम पर जितने भी बाह्यकृत्य किये जाते हैं अथवा जो धारणाएँ बनाई जाती हैं, वे प्रायः निरर्थक एवं निराधार होती हैं। धर्म के आडम्बर किसी भी समाज की प्रगति के लिए बाधक होते हैं, इसलिए इन्होंने विविध मतवादों का खोखलापन जन–जन के सम्मुख निःसंकोच भाव से प्रकट कर दिया है। रूढ़ियों के प्रति उन्हें घृणा थी, पाखण्ड का वे विरोध करते थे तथा जीवन में जो सत्य है, उसे उन्होंने स्वीकार किया और जो बाह्याडम्बर है उनका खण्डन किया है।

Improving Skillset
Takshila Journal of Research

डॉ. ज्ञान सिंह मान ने 'सूना अम्बर' उपन्यास में बाह्याडम्बर और अन्धविश्वास का वर्णन किया है– "ग्रीक के विधान क्या कहते हैं, जरा हम भी तो सुनें, सुनीत ने सप्रयास विश्वास बटोरा और कहा – "यही कि त्रासदी का मूल दैवी प्रकोप अथवा 'नेमिसस' ही है। व्यक्ति की अपनी महत्त्वाकांक्षाएँ उसके दुःख का कारण अवश्य बन सकती हैं, परन्तु विषम परिस्थितियों का योग इस दिशा में अधिक घातक सिद्ध होता है, अर्चना!

[33] डॉ. ज्ञान सिंह मान, दीमक और दायरे, पृ. 146

सुनीत ने अनुभव किया मन की कोई चिर–कुण्ठित ग्रन्थि धीरे–धीरे खुल रही है। बौद्धिक आलोक अपनी सत्ता में निर्वाण की पृष्ठभूमि सजा रहा था, उसने तनिक रूद्ध कण्ठ को साफ करते हुए कहा –

"सामाजिक परम्पराएँ भी तो प्राणी के दुःख का कारण बनी हैं, इतिहास साक्षी है। यही क्यों, धर्म तथा राजनीतिक सिद्धान्त भी तो सुखमय जीवन के लिए विस्फोटक पसीना सिद्ध हुए हैं ? इन प्रवृत्तियों का विनाशकारी नृत्य देखने के लिए व्यक्ति को अंतर्मन में झांकना नहीं पड़ता। ट्रेजिडी महापुरुषों के असफल प्रयास का ही परिणाम है। जब कोई महती आकांक्षा पराजय का मुख देखती है, सर्वसाधारण का दुःख दैन्य का भी सहज प्रसार होता है। यही है 'ट्रेजिडी' का मूलभाव है।"[34]

नैतिकता से अभिप्राय

नैतिकता शब्द का निर्माण 'नीति' शब्द से हुआ है। 'नीति' में 'नी' (णीच) धातु तथा 'ति' (क्तिन) प्रत्यय है [35] – इसका अर्थ ले जाना' है। परन्तु व्यावहारिक रूप से इसका अर्थ है उचित व्यवहार एवं सदाचार अथवा जीवन–यापन का सफल मार्ग। नीति का विशेषण है नैतिक और नैतिकता उसकी भाववाचक संज्ञा है।

कुछ विचारक नीति एवं नैतिकता में केवल सिद्धान्त एवं व्यवहार का ही अन्तर मानते हैं तथा नीतिशास्त्र को कभी–कभी नैतिक सिद्धान्तों का शास्त्र ही माना गया है किन्तु नीति का एक व्यापक अर्थ भी है जिसका प्रयोग राजनीति, अर्थ नीति आदि में होता है। इस अर्थ में वह व्यावहारिक विज्ञान से अधिक निकट है। इस दृष्टि से नीति नैतिकता पर आधारित हो सकती है परन्तु दोनों शब्दों के अर्थ और अभिप्राय एक नहीं हो सकते। मूलतः इन दोनों में सूक्ष्म अन्तर है। नीति नीतिशास्त्र एवं व्यवहारशास्त्र का अंग हो सकती है, कर्त्तव्यशास्त्र का नहीं। आज के प्रचलित अर्थों में नीति में जीवन–यात्रा को सुख –पूर्वक आगे बढ़ाने का भाव निहित है। वह परहित की अपेक्षा अपने ही स्वार्थ को लेकर चलती है जबकि नैतिकता में व्यक्त लाभ–हानि की अपेक्षा कर्त्तव्याकर्त्तव्य को अधिक महत्त्व देता है। इस दृष्टि से यह धर्म के अधिक निकट है। स्पष्टतः नैतिकता मानव का आचार –सम्बन्धी नियमन है जिसे मानव मात्र को सुव्यवस्थित रखने वाली आचार –पद्धति भी कहा जा सकता है।

Improving Skillset
Takshila Journal of Research

पाश्चात्य जगत् में नीतिशास्त्र के लिए 'एथिक्स' और नैतिकता के लिए 'मोरैल्टी' शब्द का प्रयोग होता है। क्रमशः ग्रीक तथा लेटिन के इन शब्दों का अर्थ प्रारम्भ में विशिष्ट वर्ग में प्रचलित रूढ़ियों से लिया जाता था जो न केवल मनुष्य की सभ्यागत विधियाँ थी अपितु समुदाय द्वारा अनुमोदित नियम भी थे जिनका आचरण

[34] डॉ. ज्ञान सिंह मान, सूना अम्बर, पृ. 101

[35] स्त्रियाँक्तिन। पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, अष्टाध्यायी–भाष्य, 3–3–941

नैतिक एवं विरोध अनैतिक माना जाता था।[36] धीरे–धीरे 'मोरैल्टी' का अर्थ नैतिक चरित्र और 'एथिक्स' का चरित्र–विषयक विज्ञान माना जाने लगा।[37] सामान्य रूप से यही अर्थ आज मान्य हो गया था। अतः कहा जा सकता है कि मानव –चरित्र में स्वभावतः व्याप्त सत् ही नैतिकता है। नैतिकता के लिए प्रयुक्त 'विनयविद्या', 'शील विद्या', 'सद्सद्विचार', 'सद्सद् विवेक', 'कर्त्तव्याकर्त्तव्य विचार', 'कर्त्तव्याकर्त्तव्य विवेक', धर्माचरण आदि विभिन्न तरह के पयार्य [38] इसके अर्थ की सीमाओं को स्वतः स्पष्ट कर देते हैं। उधर नैतिकता से अभिप्राय यौन –सम्बन्धी सदाचार एवं चारित्रिक पवित्रता[39] भी है। समाज में नैतिकता को नापने के लिए बहुत प्रचलित मानदण्ड है।

डॉ. भोलानाथ तिवारी नीति के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहते हैं – "समाज को स्वस्थ एवं संतुलित पथ पर अग्रसर करने एवं व्यक्ति को धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की उचित रीति से प्राप्ति करने के लिए जिन विधि या निषेधमूलक वैयक्तिक और सामाजिक नियमों का विधान देश, काल और पात्र के संदर्भ में किया जाता है, उन्हें 'नीति' शब्द से अभिहित करते हैं।"[40]

आचार्य उमेश शास्त्री के अनुसार – "नैतिकता कोई उपाधि या प्राप्त की जाने वाली संज्ञा का नाम नहीं है, अपितु ऐसी स्थिति, जिसमें मानव अपने जीवन की नैसर्गिक प्रकृति के साथ उदात्त भावना से समन्वित होकर कर्त्तव्य –धर्म के पथ पर अग्रसर होता है, नैतिकता कहलाएगी। नैतिकता जीवन का एक उदात्त भाव है– उस भाव का विकास करने के लिए नैतिकता का ज्ञान आवश्यक है, परन्तु मात्र पुस्तकीय ज्ञान अथवा आचरण हीन ज्ञान तो व्यर्थ है। अतः नैतिक ज्ञान को चरित्र और व्यवहार में तभी ढाला जा सकेगा जबकि वह ज्ञान मानव की अन्तस्थ भावनाओं की गहराइयों में पहुंचा दिया जाए। इसके लिए सम्यक् वातावरण, प्रकृति, संकल्प तथा सम्यक् चिन्तन का समन्वयवादी स्वरूप आवश्यक है। अतः पशुता से मनुष्यता की ओर अग्रसर करने वाला अथवा मानव को मानव बनाने वाला मार्ग ही नैतिकता है।"[41]

Improving Skillset
Takshila Journal of Research

[36] Johan Hartland Swan, An Analysis of Morals, P.-57

[37] Johan Deway, Theory of Moral life, from Introduction.

[38] Sir Monaier & Monier William, Dectionary of English and Sanskrit, P.-514

[39] Jan Stain, The Random House of Dictionary of English Language, P.-930

[40] डॉ. भोलानाथ तिवारी, हिन्दी नीति काव्य, पृ. 4

[41] आचार्य उमेश शास्त्री, प्रसाद साहित्य में आदर्शवाद एवं नैतिक दर्शन, पृ. 397

डॉ. रामसजन पाण्डेय ने नीति के विषय में लिखा है कि, "नीति एक अति व्यापक शब्द भाव है। यह एक उत्कृष्ट आचार–संहिता है। नीति ही मानव को कर्तव्य का विवेक प्रदान करती है।"[42] इस प्रकार नीति एक प्रकार की आचार संहिता है जो समाज को व्यवस्थित रखने में सहायक है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि नैतिकता सम्बन्धी पाश्चात्य एवं भारतीय मत में मूलभूत समानता है। दोनों में ही नीति को मानव के व्यवहार, आचार एवं उसके विकास से जोड़ा गया है। 'ऐथिक्स' एवं 'नीति' दोनों में आदर्शात्मकता का स्वर अधिक है। किन्तु 'नीति' शब्द में व्यवहारिकता भी समाविष्ट है जिसका 'ऐथिक्स' में अभाव है। 'एथिक्स' प्राचीन युनान में दर्शन शास्त्र का एक अंग था जबकि भारत में आरम्भ से ही नीति का चिन्तन एक स्वतन्त्र शास्त्र के रूप में किया गया तथा उसका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक था।

ज्ञान सिंह मान के उपन्यासों में नैतिक मूल्य

डॉ. ज्ञान सिंह मान एक प्रबुद्ध साहित्यकार थे। वे संस्कारित व्यक्ति थे। लेकिन जब उन्होंने समाज का गहराई से अध्ययन किया और भोगा तो पाया कि समाज नैतिक मूल्यों की दृष्टि से पतित हो चुका है। इसलिये उन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से समाज की स्थिति स्पष्ट की तथा मानव को नैतिकता के पथ पर आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया। उनके उपन्यासों में नैतिक मूल्यों के पतन व विकास के अनेक रूप मिलते हैं, जिनका वर्णन इस प्रकार है –

स्त्री–पुरुष की कामान्धता

भारतीय धार्मिक –नैतिक परम्पराओं में विषय भोगादि की अतिशय आसक्ति को आदर्श जीवन के विरुद्ध बताया गया है। सम्भवतः इसका कारण यह है कि इन्द्रियजन्य अनुभव हमारे यहाँ सीमित एवं सापेक्ष माने जाते हैं। इस सन्दर्भ में कहा गया है कि पाश्विक वृत्तियों में संलग्न व्यक्ति नष्ट हो जाते हैं। वह आत्मा विकास एवं आत्मानुभूति को प्राप्त नहीं कर सकता। इस कामान्धता के वशीभूत होकर वह ऐसा शैतान बन जाता है जो स्त्री को मात्र खिलौना समझता है और उसक साथ खेलकर उसे तोड़ देता है। आज के युग में स्त्री का भी यही रूप सामने आया है। वह भी पुरुष के साथ खेलती है और उसे छोड़ देती है। लेकिन कभी–कभी ये दोनों अपनी मर्जी से यौन भावना से आसक्त होते हैं –

डॉ. ज्ञान सिंह मान ने अपने उपन्यासों में स्त्री–पुरुष के इसी रूप को चित्रित किया है – 'मैली पुतली उजले धागे' उपन्यास में किरण अपना 'ब्लाउज' ठीक करने के लिए जाती है, लेकिन वहाँ पर पारदर्शी शीशा लगा होता है जिसमें से एक पुरुष उसके शरीर को देखने की चेष्टा कर रहा है –

[42] डॉ. रामसजन पाण्डेय, भक्ति कालीन हिन्दी निर्गुण काव्य का सांस्कृतिकनुशीलन, पृ. 286

''उसने सान्त्वनामय श्वास भरकर अपनी अंगी के क्लिप को ठीक से लगाया। 'ब्लाउज' के बटन बंद करके वह अपनी अस्त–व्यस्त साड़ी उठाने के लिए नीचे झुकी ही थी कि उसका सारा शरीर विस्मय, क्रोध, आश्चर्य और ग्लानि को थर्रा उठा। यह सब क्या है ? उसका सारा शरीर एक पल पतली छड़ी की भाँति काँप गया। गौरवर्ण चेहरे पर कृत्रिम रोष और लाज की लालिमा अपना प्रभाव छोड़ गईं। उसने नीचे झुककर जो देखा, उससे तो उसका शरीर प्रस्तर प्रतिमा की भाँति निश्चेष्ट होने लगा था। कैबिन की बगलों में लगे मटमैले शीशे तिरछे कोण पर देखने से पारदर्शी प्रतीत हो रहे थे। किरण के विस्फरित नयन खुले रह गए। दूसरी ओर कोई सिगरेट का धुआँ उड़ाता हुआ उसकी ओर जैसे अर्द्धनिमीलित नेत्रों से देख रहा था। शीशे के मटमैले रंग तथा धुएँ की श्यामलता में किरण ठीक से अनुमान न लगा सकी कि उसके नग्न शरीर का रसपान करने वाला लोभी कौन है। उसे तो रहकर 'रेस्तरा' के संचालकों पर क्रोध आ रहा था। वे 'कैबिन' कितने छलनामय थे। पर्दे गिराने पर भी वहां कोई पर्दा नहीं था। सबसे अधिक क्रोध तो उसे दूसरी ओर बैठे व्यक्ति पर आ रहा था। कार की किसी लोह – परत से गिरने वाला छोटा कण इतना बड़ा बरखेड़ा खड़ा कर सकता है, इसकी तो तनिक भी कल्पना नहीं की जा सकती थी। किरण ने दीर्घ श्वास लिया। जीवन में उसका किसी अपरिचित और भी वह किसी पुरुष के सामने अर्द्धनग्न –सी अवस्था में प्रकट होने का यह प्रथम अवसर था। उसका हृदय सहसा ही उस अप्रत्याशित घटना से धड़क उठा। जो कुछ हो चुका था, उस पर तो वह किसी प्रकार भी पर्दा नहीं डाल सकती थी। आवश्यकता से अधिक सतर्क होकर उसने अपनी साड़ी को शीघ्रता से अपने शरीर पर सज्जित करना आरंभ कर दिया। अधिक समय तक वह वहाँ इस प्रकार पराजित –सी अवस्था में नहीं ठहर सकती थी। उसके वहाँ देर तक ठहरने पर सखियों में से किसी के उस कैबिन में आने की संभावना सहज ही थी। अपने अस्थिर भावों तथा अधीर अंगों को नियन्त्रण में करके उसने फिर से कैबिन का पर्दा हटा दिया। उस अप्रत्याशित घटना को वह सखियों से सर्वदा के लिए छिपा लेना चाहती थी। अतः सप्रयास उसने अपने ग्लान चेहरे पर स्निग्ध भावों का पराग छिटक दिया। इससे पूर्व कि उसके पाँव अपनी सखियों की ओर बढ़े, जाने क्यों वह 'कैबिन' की दूसरी ओर बैठे व्यक्ति पर रोषमय कटाक्ष करने के लिए बाध्य हो उठी।''[43]

प्रस्तुत उपन्यास यह सब कृत्य उस पुरुष के चारित्रिक पतन को उद्घाटित करता है साथ ही उसकी पाश्विक वृत्ति को भी दिखाता है।

'सूखी रेत के घरौंदे' में 'मान' जी ने दिखाया है कि जब यौन भावना जागृत होती है तो इंसान अपना अच्छा –बुरा सब भुला बैठता है। अभिनीत और रमा के बीच इसी भावना को चित्रित किया गया है –

[43] डॉ. ज्ञान सिंह मान, मैली पुतली उजले धागे, पृ. 36–37

"अभिनीत अनुभव करता है, रमा के कोमल हाथ ने उसकी उंगलियों को बंदी बना लिया है। वक्ष से उठाकर पुनः कपोल प्रदेश पर –पलकें पूर्ववत् मूंदी हैं, शरीर कुछ सिमट –सा गया है। ओंठों की गुनगुनाहट है – समीप और मृग–शावक शायद चौकड़ी भर गया है। पावन में दुलार है, तनिक नीचे जलप्रपात ने गति धीमी कर दी है –रमा उस स्पर्श को लगभग अपना ही लेती है, सहज स्वर में कहना है उसे –

'नहीं –अभी–, अभी नहीं–'

'भला क्यों नहीं–' अभिनीत को सांस रोकनी है।

'कुछ–कुछ होने लगता है।'

'क्या होने लगता है ?'

'शादी के बाद बता दूंगी–' रमा का शरीर पुनः फैलता है।

'इस समय क्यों नहीं–'

'शर्म लगती है मुझे–' रमा का मुखमंडल रक्तिम है, अभिनीत के ओंठों को हल्की मुस्कान भरती है, गला साफ करके कहता है,

'यह शर्म क्या होती है?'

'अभि' –रमा चपल वेग–सी उठकर बैठ जाती है। आश्चर्य या विमुखता –एक ही झटके में दोनों के शरीर अलग हैं –दो धाराओं की भांति। अभिनीत की आंखों में संदेहसिक्त संशय है, रमा के नेत्रों में लालिमा, विस्मय और शरारत–, मन पुलकित है, लगता है उस वार्ता का भरपूर आनंद समेटा है उसने –परन्तु ऐसी वार्ता का सहज अवसान। उसे तुरन्त कहना है –

'डॉक्टर अभिनीत–तुम इतने भी घुग्गू नहीं हो, सब कुछ जानते हो, वास्तव में जो तुम दिखते हो, वैसे हो नहीं–परले दर्जे के बदमाश।"[44]

इस कामान्धता के वशीभूत होकर मनुष्य केवल वहशीयाना तरीके से अपनी काम तृप्ति ही नहीं करता बल्कि वह घोर जघन्य अपराध भी कर बैठता है। वह अपनी होने वाली पत्नी को भी निर्ममता पूर्वक रौंद देता है। कई बार स्त्री भी उनका साथ देती है –

[44] डॉ. ज्ञान सिंह मान, सूखी रते के घरौंदे, पृ. 26

"जलयुक्त केशों में एक धीमी सुगन्ध मोहक प्रसार फैलाने लगी है। शरीरों की दूरी अधिक नहीं है। एक पग और बढ़ाकर मैं उन रससिक्त होंठों को... विम्मी सहज है, कह उठती है –

'इस प्रकार कब तक...'

'तुममें समा जाना चाहता हूँ।'

'आगे ही क्या कम मुसीबत खड़ी की है तुमने?'

'नहीं, अब दूर नहीं रह पाऊँगा।'

'ठीक है, उधर उन लोगों का भी तो...'

'उनका संसार हमारा नहीं है'

'भला क्यों नहीं?'

'इसलिए कि हम एक–दूसरे को चाहते हैं।'

'ऐसे में क्या मर्यादा तोड़ना जरूरी है ?'

'मर्यादा तोड़े बिना मेरे आन्तरिक भाव सहज नहीं हो सकते।'

विम्मी मुस्करा देती है। विश्वस्त और स्नेही नेत्र मेरे बहुत निकट हैं। मेरे बालों को वह छेड़–सा देती है, अपनेपन का स्वर है –

'बन्नी, सब कुछ तो तुम्हारा है, फिर इस प्रकार अस्थिर – अधीर तुम..'

'यह अधीरता युग–युग से पिपासित पुरुष की यातना है, विम्मी !'

'पिपासित क्या अकेला पुरुष ही है ?'

'मैं समझा नहीं।'

'तुमने यह कैसे जान लिया कि नारी की कोई वेदना–संवेदना चिरन्तन नहीं हो सकती?''[45]

[45] डॉ. ज्ञान सिंह मान, काले पर्वत गोरे पंख, पृ. 77

आज के युग में स्त्री–पुरुष स्वेच्छा से यौन सम्बन्ध स्थापित करते हैं। जिससे मानवीय मूल्यों में तेजी से गिरावट आ रही है और समाज में व्याभिचार फैलता है लेखक ने 'बसन्त चन्द्रिका' उपन्यास में स्त्री पुरुष के उन्मुक्त यौन सम्बन्धों को चन्द्रिका और उसके प्रेमी के माध्यम से प्रस्तुत किया है –

''चन्द्रिका अपना मस्तक मेरे कंधे के समीप ले आती है, तनिक हंस कह सकती है –

'डर और तुम्हारे साथ–'

पुनः उसे अपनी बाहें मेरे कन्धों से नीचे गोलाकार स्थिति में मेरे वक्ष तक फहरा देती हैं। वर्षा है, सड़क की पेचदार रवानी में दूर तक कोई नहीं है। ऐसा एकान्त देखकर ही शायद चन्द्रिका ने इस प्रकार मधुर आलिंगन में –

मुझे 'स्कूटर' की चाल धीमे करनी है। शरारत तो है, मन कहता है जीवन के शेष क्षण बस वहीं उन्हीं सांसों में सिमट आएं। तनिक खुलकर उसे कहता हूँ –

'इस तरह साथ जुड़ कर बैठना अच्छा लगता है तुम्हें ?'

'तुम्हें नहीं लगता?'

यह प्रश्न है या उत्तर कोई नहीं समझ पाता। वर्षा से भीगता उन्मत्त यौवन पवन हिंडोल में झूम–झूम उठता है।''[46]

इसी प्रकार डॉ. ज्ञान सिंह मान ने 'दूसरा पतझड़' में सुगन्धा और सर्वेश के बीच के अनैतिक सम्बन्धों को उजागर किया गया है –

"सुगन्धा की पलकों में आलस्य उमड़ने लगता है। शरीर की थकान उसे तोड़–तोड़ जा रही है। एक खुली उन्मुक्त जंभाई लेकर अनायास ही कह उठती है,

'शिमला कई रातें सो नहीं पायी'

सर्वेश कुर्सी से उठकर उसके तनिक निकट पहुंचता है, आत्मीय भाव स्पष्ट है,

'लगता है थक गयी हो?'

'हां, बीयर का नशा भी तो–'

[46] डॉ. ज्ञान सिंह मान, बसंत चन्द्रिका, पृ. 66

सर्वेश निश्छल –सी सांस भरता है,

'जब तक नौकर खाना तैयार करता है, तुम कुछ सुसता लो–'

'यह ठीक है।'

'यहाँ नींद आ सकेगी तुम्हें ?'

सर्वेश उसे छेड़ना चाहता है।

'भला क्यों नहीं?'

व्यंग्य बाण फिर छूटते हैं,

'नशे में खोई, तुम बेखबर.... अगर मैं कुछकर बैठा तो...'

"सुगन्धा उसे अर्थपूर्ण नेत्रों से देखती है, दान्त अनायास ही निचला ओंठ दबा लेते हैं और तनिक ऊपर उठकर वह सर्वेश को 'कॉलर' से पकड़ कर समीप खींच लाती है, शरीरों की दूरी मिटाती हुई कहती है,

'सचमुच तुम इतने बहादुर होते तो मुझे यूं रोना पड़ता –'

और सुगंधा अपने होंठ आगे बढ़ा देती है। सर्वेश के भीतर कुछ हिचकिचाहट–सी है, पीछे की ओर जोर बढ़ता है। कह उठता है वह,

'क्या करती हो – ?"

'कुछ नहीं, पतिव्रता होने का ढोंग मिटा रही हूँ–'

और वह अपने तप्त होंठ सर्वेश के होंठों से सटा देती है। सर्वेश असमंजस की स्थिति में है, सुगन्धा को झटकता हुआ द्वार की ओर देखता है।

'अगर नौकर आ गया तो – ?'

'वहाँ हम दोनों के बीच पाली होती है, यहाँ अगर नौकर आ भी जाए तो आमसान नहीं गिरेगा–'

और वह पुनः सर्वेश को बाहुपाश में लेती हुई अपने नशीले होंठ उस कलाकार के।''[47]

[47] डॉ. ज्ञान सिंह मान, दूसरा पतझड़, पृ. 60–61

दोनों शिमला में मिलते हैं और वहाँ दोनों एक हो जाते हैं। वे नशे मे चूर होकर यौन सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं।

'एक रथ छह पहिए' में अंजू अपना सब कुछ विनय को सौंप देती है। वह अपने यौवन की मस्ती को नहीं संभाल पाती और विनय के साथ शराब पीकर उसके साथ हमबिस्तर हो जाती है। लेकिन जब यह सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं तो उसे ग्लानि भी अनुभव होती है –

"थिरकते पाँव जैसे उसके यौवन –भार को उठाने में असमर्थता प्रकट करने लगते थे। परन्तु विनय ने अंजु को इतनी अस्थिर, निर्बल एवं चारित्रिक दृष्टि से अप्रौढ़ तो कभी समझा नहीं था कि विवाह से पूर्व ही वह अपने कौमार्य को, सतीत्व को तथा उज्ज्वल भविष्य को किसी अजनबी के पास गिरवी रख आयेगी। विवाह के पूर्व माँ बनकर क्या वह अपने और विनय के लिए गहरा कलंक नहीं बन गई है ? विनय ने कभी भी तो उसकी सरल चंचलता में इस दारुण परिणाम की झलक नहीं देखी थी। अंजु सभी कुछ तो उससे पूछकर करती थी, वह आवश्यकता से अधिक स्वच्छन्द और उन्मुक्त मनोवृत्ति वाली थी, परन्तु फिर भी घर से बाहर पाँव रखने से पूर्व वह विनय से आज्ञा तो माँग ही लेती थी। विनय को कभी भी तो उसने कोई शिकायत अथवा खिंचाव का अवसर नहीं दिया था। निरभ्र नभ में ये धूमिल मेघ सहसा कहाँ से उमड़ पड़े ? समय से पूर्व ही रसाल यौवनोन्मत्त कैसे हो गया? शुक्ति के गुह्य गर्भ में यह रहस्मय धूमिल आलोक फैला?"[48]

'दूसरा पतझड़' उपन्यास में सुगन्धा स्वयं को नहीं रोक पाती और उसकी नस–नस सर्वेश का आलिंगन पाने के लिए व्याकुल है –

"सुगन्धा की नस–नस व्याकुल है, सांसों में ठहराव नाम को नहीं, अंग प्रत्यंग में एक अपूर्व अपरिचित–सी स्फूर्ति है। सर्वी को बाहों में समेटती हुई वह एक साथ.... आन्तरिक भावोदधि शब्दों में उमड़ता है, क्या कहना है और क्या नहीं –बस वातावरण अशान्त बना देना है वह सर्वेश के कमरे में है, इसका प्रमाण प्रप्सुत प्रलय को भी देना है, उसे थिरकते वक्ष में क्या है उसे शब्दों की तहे स्पष्ट करती हैं –मेघ गर्जन के उपरान्त भरपूर वर्षा –सी स्थिति है, सुगन्धा कहे जा रही है

"ओह सर्वी, कैसा है यह जीवन.... मेरे अच्छे मन, मेरे''

एक साथ असंख्य आलिंगन, असंख्य संस्पर्श–ओठों का होंठों से–'

'मेरे सर्वी, नहीं... इतनी देर तक, कैसे रही तुमसे दूर–'

[48] डॉ. ज्ञान सिंह मान, एक रथ छह पहिए, पृ. 66–67

वह पुनः सर्वेश के मस्तक पर अपने होंठों से प्रेममय चुम्बनों की झड़ी लगा देती है–

'तुम नहीं समझोगे, सर्वी –उधर बम्बई में, शादी के बाद –आह!

मेरे जीवन, मेरी आस्था–'

एक अविस्मरणीय प्रगाढ़ आलिंगन।

'कभी सोच भी नही सकती थी, इस प्रकार, शादी के दस महीने तुम –ओह माई लव, माई डीयरस्ट... एवर, एवर....सी..... सर्वी।''

फिर से शरीरों का मिलन, एक आत्मीय समझौता... नहीं, सुगन्धा सब कुछ कर –धरकर भी सम्भवतः अपने मनोभाव पूर्णतया स्पष्ट नहीं कर पाती। अन्तर्मन में उमड़ते सागर को शब्दों और उन अतृप्त भंगिमाओं में बाधा पाना क्या इतना ही सहज और सरल है –

'आह! सर्वी, कब तक इस प्रकार जलना है मुझे –''

लगता है प्रलय शान्त होने को है। सुगन्धा बेबस –सी हो अपना मस्तक सर्वेश की छाती से सटा देती है। ऊष्म सांसों में उद्विग्नता प्रकट होती है।[49]

इस प्रकार लेखक ने दिखाया है कि अनैतिक यौन सम्बन्ध से मनुष्य का नैतिक पतन होता है, जो कि किसी के लिए भी अच्छा नहीं है। जब समाज ने मानव के लिए विधिवत काम–तृप्ति का तरीका विवाह बनाया है तो मानव को उसमें विश्वास कायम करके संयम को अपनाना चाहिए और अपने अन्दर नैतिक शक्ति उत्पन्न करने के साथ –साथ जीवन में नैतिक मूल्यों को अपनाना चाहिए। स्त्री को पुरुष के प्रति तथा पुरुष को स्त्री के प्रति वफादार रहना चाहिए जिससे उनका चरित्र उज्ज्वल हो सके क्योंकि व्यक्ति के उज्ज्वल चरित्र से ही स्वस्थ समाज का निर्माण किया जा सकता है।

Improving Skillset
Takshila Journal of Research

नशे की आदत

आज के समाज में नशे की आदत निम्न वर्ग से लेकर उच्च वर्ग, स्त्री बच्चे से लेकर पुरुष तक में पायी जाती है। इस मद्यपान की आदत से व्यक्ति का मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है। उसकी बुद्धि निर्णय लेने की शक्ति खो बैठती है और वह बुरे कार्यों में संलिप्त हो जाता है। डॉ. ज्ञान सिंह मान ने इस नशे की आदत का वर्णन विस्तृत रूप से किया है।

[49] डॉ. ज्ञान सिंह मान, दूसरा पतझड़, पृ. 34–35

'सूना अम्बर' उपन्यास में सुदीप के माध्यम से शराब की आदत का वर्णन किया है। वह एक समारोह में शराब के गिलास पर गिलास छलकाता है –

"सुदीप हंस दिया। सांझ के समारोह में सभी आयेंगे, किन्तु वह – ? एक अतृप्त निश्वास उसी के शरीर को झंझोड़ गया। 'कैंटीन' के बाहर, दूर तक फैले हुए खुले प्रांगण में जवानों की भीड़ एकत्र हो रही थी। समारोह की तैयारी में कोई कमी न रह जाये, उन्हें इस बात का कितना ध्यान था। उस सांझ को छोटे –बड़े सभी अधिकारी आ रहे थे। सुदीप सब कुछ सोच कर जाने सहसा उद्विग्न क्यों हो उठा। ध्यान नहीं रहा कब उसके अस्थिर हाथ मधु–पात्र को अतृप्त होंठों के समीप लाते हुए आन्तरिक व्यथा से मुक्ति दिलाने का उपक्रम जुटाने लगे। एक बार पुनः गिलास भरने लगा, परन्तु अब की बार सुदीप का मन कहीं ओर था। किसी ध्यान निमग्न मन्त्रणा की भान्ति उसकी उंगलियाँ 'सन माइका' से ढकी मेज पर कुछ अंकित करने लगीं। वायु के हल्के–धीमे प्रहारों में भी बालु–कणों की पतली परत उड़–उड़कर मेज पर जमती रही थी। जहाँ भी उंगली चलती कुछ न कुछ बन जाता, किसी नवीन भाव का साकार होकर उस अस्पष्टता पर प्रकट हो आना सहज ही था। एक नहीं, असंख्य रेखाओं से सुदीप ने उस धूमिल मेज पर चित्रों की विचित्र पृष्ठ भूमि सजा दी। शराब से छलकते गिलास से उंगलियों के सहज स्पर्श से कब कुछ तरल बिन्दु मेज पर बने कृत्रिम से चित्रों में रंगों का भ्रम उत्पन्न करने लगे, कोई भी नहीं जानता। सुदीप सब कुछ सोचने का अवसर न पा सका, कलाकार कला के साक्षात्कार में खो चुका था। मस्तिष्क पर एक गहन तन्द्रा अपना मोहक–माया जाल फैला रही थी, वह खो ही तो रहा था कि किसी के स्पष्ट एवं उन्मुक्त स्वर ने उसे अशान्त बना दिया। स्वर परिचित ही था, कोई कह रहा था।

'अरे सुदीप, तुम हो – ?'[50]

आज के युग में नशे की आदत इस तरह से फैल चुकी है कि डिनर हो या पार्टी शराब को ही महत्त्वपूर्ण समझा जाता है।

Improving Skillset

डॉ. ज्ञान सिंह मान ने 'दूसरा पतझड़' में नशे की आदत को चित्रित किया गया है –

Takshila Journal of Research

"और संध्या रह नहीं पाती। विद्युतवेग से वह सिगरेट पर झपटती है, लाइटर जलाकर, एक सिगरेट स्वयं सुलगा लेती है। सर्वेश की सांस वहीं थम जाती है, धुएँ के बादल मानो घना अंधकार हैं, पारदर्शी कुछ भी नहीं हैं। मुख खुला रह जाता है, आँखों में आश्चर्य मिश्रित भाव –सर्वेश कह उठता है –

"संध्या! तुम! कब से यह सब – ''

[50] डॉ. ज्ञान सिंह मान, सूना अम्बर, पृ. 175

सर्वेश के लिए संध्या का वह रूप बिल्कुल ही नया था। इतने वर्ष उसने संध्या के साथ बिताये, ऐसी 'फ्री' और 'माडर्न' तो वह कदापित नहीं थी। वह तो सांस्कृतिक वातावरण में पली एक स्थिर भारतीय –

सर्वेश को याद हो आया, होटल की एक पार्टी में उसने स्वयं ही संध्या से अनुरोध किया था, एक गिलास–सिर्फ एक गिलास 'बियर' पीने के लिये। उस समय तो –लगता था आकाश गंगा एक ही झटके में धरती को रसातल में डुबो देगी। बिजली की कड़क से घर में उजाला नहीं होगा–इसी प्रकार नशे में चूर प्रेमिका की बाहें –''[51]

प्रस्तुत उपन्यास में तो सर्वेश के साथ संध्या भी शराब का सेवन करती है और दोनों सिगरेट भी पीते हैं।

डॉ. ज्ञान सिंह मान ने 'एक रथ पहिए' उपन्यास में बलराम और अंजु भी शराब पीते हैं और उन्मुक्त यौन सम्बन्धों में लिप्त हो जाते हैं –

"अभी ठीक हुआ जाता है –' और बलराम ने मेज के पार्श्व भाग से व्हीस्की की बोतल निकालकर दो–तीन छोटे गिलास अन्दर फेंककर, फिर से अंजु के शरीर को थाम लिया। अंजु के मस्तक में मादकता की अस्पष्ट लहरें व्याप्त थीं। परन्तु कमरे में क्या कुछ हो रहा है, इसके प्रति वह बिल्कुल ही अचेत नहीं हुई थी। बलराम की ओर अपनी भारी पलकों से देखकर बोली –

'अरे बलराम –तुमने पी है –' व्हीस्की–पी है।'

'नहीं अंजु, जरा थकान व्हीस्की की है –बलराम ने उसे और अपने निकट कर लिया।

'शराब के धीमे प्रहारों और दवाई की मादक लहरों में दो प्रेमी एक–दूसरे के गले मिले, सामाजिक समस्त नैतिक शृंखलाओं को तोड़ गए। शराब की आड़ में बलराम ने अंजु का शरीर स्पर्श किया। मादकता की गहन परत में छिपी अंजु, अनुरोध कर सकने की क्षमता रखती हुई भी, कुछ न कर सकी। समय बीत गया। यौवन की उद्दाम तरंगे एकबारगी अंजु के आंचल से खेलकर शांत हो गईं। शराब की मस्ती में डूबे दो शरीर वासना के भीषण खण्डहर में इस प्रकार खोए की शेष समस्त विश्व पीछे छूट गया। जो हुआ उसकी भूमिका तो सम्भवतः पन्द्रह या बीस मिनटों में समाप्त हो गई। परन्तु जब अंजु को होश आई तो सायं के छः बज रहे थे। उसने आँखें खोली, सामने घड़ी में समय देखकर उसका शरीर जैसे एकबारगी झटका खा गया। हिस्की की बोतल और कालीन पर लुढ़कता हुआ गिलास तीन घंटे पूर्व हुए अनैतिक काँड का परिचय दे रहे थे। अंजु के नेत्र अभी भी आलस्य के कारण भारी थे। पलकें तो जैसे बाह्य विश्व का भार उठाना ही

[51] डॉ. ज्ञान सिंह मान, दूसरा पतझड़, पृ. 17

नहीं चाहती थी। अंजु ने चारों और आँख उठाकर देखा, बलराम वहाँ नहीं था। उसने आवाज दी, नौकर द्वार खोलकर भीतर आया और मस्तक झुकाकर खड़ा हो गया।''[52]

इस नशे की आदत से आज पूरा समाज की ग्रस्त हो गया है। न केवल पुरुष ही इस नशे का शिकार है स्त्रियाँ भी इस नशे की ओर बढ़ रही हैं।

डॉ. ज्ञान सिंह मान ने 'दूसरा पतझड़' उपन्यास में इसी समस्या की ओर ध्यान आकर्षित किया है। प्रस्तुत उपन्यास में सुगन्धा और सर्वेश दोनों 'बीयर' का सेवन करते हैं –

"मेज पर रखी 'बीयर' की बोतलों की ओर संदेहमय ढंग से देखता हुआ सर्वेश कह उठता है,

'तुमने कहा था नौकर से –'

'हां–मैंने मंगवाई है –बीयर अच्छी लगती न, ऐसी गर्मी तो ठण्डी बीयर –'

'लेकिन मैं तो छोड़ चुका हूँ यह सब...' सर्वेश के मस्तक पर आड़ी तिरछी रेखाएँ उभर आती हैं।

सुगन्धा के विश्वस्त नेत्र नीचे झुक जाते हैं –

'मैंने अपने लिए मंगवाई है –'

'सुगंधा। तुम–ओह –'

सर्वेश का रोम–रोम कम्पायमान है। सांस बिदक –बिदक जा रही है। वह एक ही झटके से उठता है और दीवार से सटी अलमारी के पास चला आता है। मन की दशा ठीक नहीं है केवल दस महीने होने का अंतराल सुगन्धा के चरित्र में इस प्रकार का परिवर्तन ला देगा, ऐसा तो कभी सर्वेश ने –

आन्तरिक आह पूर्ववत् दम तोड़कर रह जाती है। आज सुगन्धा उस की अतिथि है, बीते कल पर प्रेममय पुलक का जो कोहरा छा रहा था, शायद अब –

इससे पूर्व कि सुगन्धा उसके इस व्यवहार का आशय कुछ और लेती, सर्वेश अपने नाखून से अल्मारी पर रेखा अंकित करता हुआ कहता है,

'अच्छा किया तुमने, सुगन्धा – अगर अभी मेरी तरह इन बोतलों से किनारा कर लें तो सरकार की 'एक्साईज'....''

[52] डॉ. ज्ञान सिंह मान, एक रथ छह पहिए, पृ. 143

"वाह, क्या खूब कही जनाब ने –''

सुगन्धा का व्यंग्य स्पष्ट है। तीखा होने पर भी मधुर है।

"घर आए अतिथि का ध्यान तो है नहीं, सरकार के खाते की चिन्ता....''

"नहीं सुगन्धा –''

सर्वेश तुरन्त अपना भाव बदल देता है –

"यह बात नहीं है, उन दिनों मेरे साथ ले पाती तो....''

"चलो एक ही बात है, अब हमारे साथ सही–''

"नहीं, सुगन्धा –अब नहीं मन के प्रांगण में कहीं–''

सर्वेश पुनः कुर्सी पर आ बैठता है। सुगन्धा 'बीयर' की बोतल खोलती है। उफनता नशा भरपूर झाग बनकर गिलास की तह नाप जाता है। सर्वेश विस्मृत एवं मुदित नेत्रों से सुगन्धा की ओर देखता है। सुगन्धा सब कुछ सहज ढंग से करती जा रही है। कहीं कोई दबाव नहीं, कोई विरूपता और विकृति नहीं, चेहरे पर किसी प्रकार का भी कोई दुराव नहीं।

सब कुछ यंत्र चालित –सा चल रहा है। सर्वेश 'कैम्पा' सिप करता जा रहा है और सुगन्धा बीयर की उफनती झाग को...

धीरे–धीरे कमरे का वातावरण भी मादक होने लगता है। वायु का धीमा प्रवाह सुगन्धा के ठीक केशों के पास आकर रुक–सा जाता है। शायद झुककर होंठों के पास–मादकता छलककर रंग में बदली जाती है। सुगन्धा अपना होंठ तर करती हुई कह देती है।

'मजा नहीं आया मेरे यार... कहाँ 'कैम्पा' और कहाँ यह बीयर –'

सर्वेश हंस देता है। क्या वह सचमुच ऐसा सहज है। कहीं उसकी हंसी भ्रम मूलक दिखावा तो नहीं है ?

'अपना – अपना भाग्य है, सुगन्धा।'

'भाग्य शब्द नहीं–सर्वी' और कुछ कहो। हमारे देश का यह बहुत घिसा–पिटा शब्द है –मुझे चिढ़ है इस शब्द से –

'चिढ क्यों है तुमने तो भाग्य अच्छा ही पाया है ?'

'हाँ –'

सुगन्धा गट –गट करके गिलास खाली कर देती है। आँखों में लालिमा कौंध–कौंध जाने को है। हाथ पुनः बोतल की ओर बढ़ते हैं,

'देख तो रहे हो, इससे अच्छा भाग्य –सर्वी –'

सुगन्ध बीयर सने ओंठ फैला देती है,

'बोतलों में भाग्य होता तो तुम इसे क्यों छोड़ते।'

'मेरी बात अलग है?'

दोनों फिर से अपने–अपने गिलास उठा लेते हैं। 'कैम्पा' पीने वाला सब कुछ जानता है और बीयर की ओर बढ़ते हाथ सब कुछ जानकर भी अनजान हैं –

सुगन्धा अपना वाक्य दोहरा देती है।

'हाँ, तो कैसे अलग है तुम्हारी बात – ?'

'इसलिए कि मैं वह नहीं हूँ जिसके लिए तुम्हें यह सब शुरू करना पड़ा–'

'तुम उस पुरुष की बात करते हो जो सिर्फ अधिकार के नाम पर मुझसे जुड़ गया है–'

'हाँ–'

'ठीक कहते हो, फिर भी वास्तविकता से बहुत दूर हो–'

'मैं समझा नहीं–'

बीयर सुगन्धा की सांसों के बहुत निकट है, होंठ गिलास से सटे हैं।

धीरे–धीरे बीयर का नशा उसके शब्द प्रवाह को –

'अब समझने को रहा भी क्या है ? महज अधिकार मिल जाने से ही पुरुष सब कुछ नहीं पा सकता–कम से कम उसे तो नहीं जिसे वह निजी रूप में पत्नी समझता है। तुम्हारे पास कौन–सा अधिकार है, स... ? फिर भी तुमने इस नारी का सब कुछ –'

सर्वेश के नेत्र झुक जाते हैं। सुगन्धा को बीयर का एक बड़ा घूट गले के नीचे ले जाना है। आँखों से जब बिन्दुओं का धुंआ–सा उमड़ने लगता है।[53]

वस्तुतः मद्यपान के अत्यधिक सेवन से व्यक्ति की सामान्य चेतना खत्म हो जाती है। नशा पारिवारिक विघटन का कारण तो है ही, सामाजिक विघटन में भी इसका योग होता है। इस प्रकार की प्रवृत्ति से अनुमान लगाया जा सकता है कि समाज की मनोवृत्ति अस्थिर है और क्षणिक संवेदनात्मक सुख के लिए नशा किया जाता है। इस प्रकार का सुख निश्चित रूप से व्यक्ति को नैतिक–दृष्टि से पतित करता है। इस प्रकार के असुरक्षात्मक व्यक्तित्व वाला समाज निश्चित रूप से अनेक समाज विरोधी कार्य कर सकता है।

डॉ. ज्ञान सिंह मान ने 'अधूरी मूर्तियाँ' में प्रदर्शित किया है कि छाया रवि को कहती है कि लो मैं तुम्हारी मनपसन्द चीज सिगरेट लेकर आयी हूँ

''लो रवि, आज तुम्हारी मनचाही वस्तु लेकर आई हूँ।''

सिगरेट का डिब्बा हाथों में आते ही रवि के अन्तर्मन में एक विचित्र प्रकार की टीस उत्पन्न हो गई। उसे सिगरेट से बहुत मोह था। शहर में रहते हुए वह एक पल के लिए भी तो अपने होंठों को अवकाश पाने का अवसर नहीं देता था। इधर कार दुर्घटना के पश्चात् जैसे उसने सिगरेट को भुला ही दिया था। स्वयं वह एक धनी और सम्पन्न प्राणी था। महंगी सिगरेट वह पी सकता था, सामान्य सिगरेट में न तो उसकी रुचि थी और न ही उसके प्रति आसक्ति। गोल्ड फ्लेक सिगरेट पीकर वह छाया और विशाल बाहु को आर्थिक दृष्टि से और अधिक तंग नहीं करना चाहता था। क्या पहले वे उसके लिए कुछ कम त्याग कर रहे हैं ? यही सोचकर रवि ने सिगरेट की चर्चा कभी भी छाया से नहीं की थी। किन्तु सहसा छाया को यह विचार कैसे सूझ गया? रवि ने स्वयं से प्रश्न किया। छाया यह सब कैसे जानती है ?''[54]

इसी प्रकार शराब या सिगरेट पीने वाला व्यक्ति किसी न पीने वाले व्यक्ति को पीने के लिए जिद्द करता है, जिससे वह किसी दसरे व्यक्ति की जिन्दगी को भी बर्बाद कर देता है। डॉ ज्ञान सिंह मान ने 'एक रथ छह पहिए' में भी यही दर्शाने का प्रयत्न किया है –

''कलकत्ता नगर के एक बड़े बार–होटल के काउंटर के समीप खड़े होकर उसने कहा –

'लो भई एक गिलास और भर दो ?'

[53] डॉ. ज्ञान सिंह मान, दूसरा पतझड़, पृ. 38, 39, 40, 41

[54] डॉ. ज्ञान सिंह मान, अधूरी मूर्तियाँ, पृ. 76

'मि. बलराम' काउंटर पर खड़े व्यक्ति ने उत्तर दिया,

'आप बहुत पी चुके हैं, अब घर जाइए –'

'घर –हिक –अरे पाजी अपना तो यही घर है। बेघरों का घर, यहाँ कौन–सी रोक–टोक है। मेरी जान नखरा न करो, भर दो, इधर देखो गला सूख रहा है..' बलराम अभी गिलास मुँह को लगाने ही वाला था कि एक पतले शरीर की विदेशी लड़की ने उसका हाथ पकड़ लिया। वह अधिक स्पष्ट हिन्दुस्तानी नहीं बोल सकती थी। फिर भी उसने सप्रयास कहा –

'ओ, नो डीयर बलराम, तुम्हें इतना पीना अच्छा नहीं, आओ मेरे साथ...'

'कौन? जिन्नी–अरे तुम कहाँ से आ गई – और बलराम ने अपना सारा बोझ जिन्नी के कन्धों पर डाल दिया। जिन्नी के अस्थिर पाँव, लड़खड़ाने वाले बलराम को उसके कमरे तक ले गए। काउंटर से अन्तिम बार प्राप्त की शराब अभी बलराम के गिलास में ही थी। कमरे में आकर उसने गिलास जिन्नी के मुख की ओर लगाया,

'नहीं डियर, आज नहीं–फिर अभी। तुम जानता हमने कभी–तुम्हें नहीं टाला। पर आज नहीं–'

'ओ जिन्नी, माई लव–ऐसा न कहो–' बलराम ने सोफे पर निराधार गिरते हुए कहा।

'तुम नहीं पीओगे तो, तो यह मचलती रात कैसे कटेगी–हिक–इधर देखो –बलराम ने सौ–सौ के नोट अपने पर्स से निकालकर हवा में उड़ा दिए।''[55]

प्रस्तुत उपन्यास में बलराम जिन्नी को पीने के लिए बाध्य करता है।

इसलिए आज आवश्यकता इस बात की है कि मद्यपान से होने वाली विकृति के बारे में जानकर इससे दूर रहने की कोशिश करें और इसके लिए नैतिक मूल्यों का पालन करें। क्योंकि किसी वस्तु का पालन ही उसकी सुरक्षा करना या बढ़ोत्तरी करना हो सकता है। इन विकृतियों से बचने के लिए वैसे भी आज नैतिक –मूल्यों की अत्यधिक आवश्यकता है। तभी समाज को पतन की गर्त में जाने से बचाया जा सकेगा। इसलिए हमें अपने जीवन में नैतिक –मूल्यों को अपनाना होगा।

आदर्शवाद

[55] डॉ. ज्ञान सिंह मान, एक रथ छह पहिए, पृ. 158

भारतीय संस्कृति में धार्मिक नैतिक –मूल्यों के अन्तर्गत आदर्शवाद को उच्च स्थान दिया जाता है तथा जीवन के हर क्षेत्र में आदर्शवाद को स्थापित किया जाता है। हमारा धर्म हमें शिक्षा देता है कि अपना कोई भी कार्य हो उसे आदर्श की भावना से करो। ऐसा कोई भी कार्य न करो जिससे किसी के दिल को पीड़ा पहुंचे। तुलसीकृत 'रामचरितमानस' महाकाव्य आदर्शवाद का सबसे बड़ा उदाहरण है। जहाँ हर चीज आदर्श को छूकर चलती है। इसी प्रकार डॉ. ज्ञान सिंह मान ने भी अपने उपन्यासों में आदर्शवाद का वर्णन करके पाठक को उसे जीवन में अपनाने की प्रेरणा दी है ताकि समाज में नैतिक –मूल्यों का विकास हो और सामाजिक एवं धार्मिक बुराइयों का विनाश हो। हमारे समाज में आदर्शवाद कर्म आदर्श से समन्वित होता है। जो नैतिकता की सबसे बड़ी मिशाल है। अगर नैतिक मूल्यों को कुछ शब्दों में कहना हो तो कह सकते हैं –नारी का आदर्श जीवन।

डॉ. ज्ञान के उपन्यासों में भी आदर्शवाद के दर्शन होते हैं। 'मृगतृष्णा' उपन्यास में रेखा धनी पिता की सन्तान होते हुए भी गरीब लोगों की बस्ती में जाकर उनकी सहायता करती है –

''रेखा धनी पिता की सन्तान होकर भी, एन.सी.सी. की साधारण वर्दी में जिस प्रकार का निस्वार्थ सेवा भाव दर्शा रही थी, उसने अजय के मन में रेखा के लिए विशेष सम्मान का दीपक ज्योतिर्मान कर दिया। अजय का पूर्व कल्पित भ्रम दूर हो गया। कम से कम उसे इस बात का ज्ञान तो हो पाया कि बाहिर से कंचन की तरह चमकने वाली रेखा के भीतर शहद की सरसता और मधुरता भी विद्यमान है।''[56]

हमारे समाज में पुरुष भी आदर्शवादी जीवन जीता है। वह किसी की दुःख तकलीफ में मदद करता है, तो किसी की असमय सहायता करता है। वह स्वयं कष्ट सहकर अपनी जरूरतों को कम करके दूसरों की जरूरतें पूरी करता है।

डॉ. ज्ञान सिंह मान ने 'जलते कलश' उपन्यास में प्रदीप अपनी परवाह किए बगैर दूसरों की सहायता करता है –

Improving Skillset

"चेयरमैन ने मार्ग की ओर संकेत किया, 'इधर से आओ–'

Takshila Journal of Research

प्रदीप ने झाड़ी का चक्कर काटकर पुनः अपना पाँव सीधी रेखा पर रख दिया। 'चेयरमैन' ने सांत्वनामय स्वर में कहा–

'केवल उसी दिन इधर आना होता है जब मेरी पत्नी और बच्चे मेरे साथ नहीं होते–'

[56] डॉ. ज्ञान सिंह मान, मृगतृष्णा, पृ. 71

'पत्नी और बच्चे –'

अव्यक्त से शब्द प्रदीप के होंठों को हल्का प्रकम्पन भर गए। इतना धीमा था यह शब्द प्रवाह की सांसों की ऊष्मा भी इन्हें निगल नहीं पायी, प्रदीप ने तुरन्त नेत्र उठाकर 'चेयरमैन' की आँखों में देखा। एक हल्की उदासी अनायास ही नेत्र कोरों में झांक गई थी। क्षणपूर्व की समस्त पुलक शायद एक ही झटके में पुष्पों की ढलती सुगन्ध में लौट गई। पत्नी और बच्चों का स्मरण... ? प्रदीप ने चाहा कि वह चेयरमैन के चेहरे पर जमी मलिन आह को तुरन्त अपनी जिज्ञासु दृष्टि से कुरेद दें, उस व्यक्ति का समस्त दमित सन्ताप एक ही झटके में बाहर खींच लाये, परन्तु –परन्तु नहीं, किसी के व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में कुछ कह या सुन पाना क्या इतना ही सरल है? कुछ सोच कर उसने मौन ही बने रहने का मन बना लिया। जो कुछ कहा जा रहा है उसके आगे–

अभी प्रदीप कोई निश्चित धारणा नहीं बना पाया था, विचारों के अश्व लक्ष्यहीन पवन की भांति बस उड़े ही जा रहे एक भद्र व्यक्ति ने यथार्थ अनुभव में बांध दिया। आने वाला व्यक्ति 'चेयरमैन' का अन्तरंग सक्रेटरी था। निकट आकर उसने पुरुष स्वर में कहा–

'कुमार साहिब –मैनेजर मोंगिया आपसे बात करना चाहते हैं। अभी फोन पर ही हैं?''[57]

प्रस्तुत उपन्यास में प्रदीप श्रमिकों के हक के लिए अपनी नौकरी की भी परवाह नहीं करता। 'तैरते पत्थर डूबते साये' उपन्यास में नारी आदर्श को प्रस्तुत किया गया है। जिस पुरुष को एक बार अपना मान लेती है। जीवन भर उसका साथ निभाती है –

"सर, नारी जीवन में केवल एक ही बार पुरुष के सम्मुख अपने सम्पूर्ण नारीत्व सहित आत्म समर्पण करती है, ऐसे पुरुष को पाकर वह धन्य हो जाती है जिसके सम्मुख उसका आत्माभिमान गल कर सहज में ही श्रद्धा एवं भक्ति भाव को भी समेट लेता है, वह ऐसे परुष के चरणों में अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देती है जो अपने पुरुषत्व में नारी की पूर्णता का परिचायक हो सके, जिस पुरुष को पाकर उसे जीवन में फिर कुछ और पाने की लालसा ही न रहें, नारी के लिए वही पुरुष वास्तव में पुरुष है जो अपने लिए भी पुरुष ही बना रहता है, सर –[58]

[57] डॉ. ज्ञान सिंह मान, जलते कलश, पृ. 50

[58] डॉ. ज्ञान सिंह मान, तैरते पत्थर डूबते साये, पृ. 89

हमारे समाज की नारी ऐसी है जो अपनी इच्छा से ज्यादा दूसरों की इच्छा का ध्यान रखती है। वह अपने परिवार और समाज की किसी भी मर्यादा को तोड़ने की कोशिश के बजाय उसे निभाती है, उसी के निभाने में उसकी आदर्श भावना छिपी है।

'एक रथ छह पहिए' उपन्यास में विजय और बेला के माध्यम से स्त्री की इसी भावना को प्रतिपादित किया गया है –

"विजय बाबू – बेला आहत हो उठी। ऐसा अनुभव हुआ किसी गुप्त वेदना ने उसके अंतराल में विष भर दिया। उसने अपना हाथ विजय के कन्धों पर रख दिया। बेला का यह प्रथम स्पर्श विजय को पुलकित कर गया। परन्तु पुलक से अधिक उस स्नेही स्पर्श में आत्मीयता अधिक थी। बेला ने एक धीमी आह भरी और कहा, 'ऐसा मत कहिए, विजय बाबू, मरने वाले की आत्मा को दुःख होगा। इन पत्रों में कहीं भी जायदाद को धर्मार्थ लगाने की चर्चा नहीं है, परन्तु क्या किसी को दिए वचन को केवल पत्रों पर लिखकर ही पक्का किया जाता है ? इस संसार से लौटकर क्या हमें कहीं और मुंह नहीं दिखाना है ? इस विश्व से परे भी कोई व्यावहारिक जगत है, नहीं तो हम सबको फिर से अच्छे –बुरे कर्मों का लेखा करना होगा –मैं इसे कैसे भूल सकती हूँ। फिर क्या भौतिक सुख ही इस जीवन की चरम सीमा है ? यह तो केवल शरीर का शृंगार है। बाह्य शृंगार के मोह में क्या आत्मा को सर्वथा विस्मृत कर देना होगा ?''[59]

प्रस्तुत उपन्यास में बेला विजय बाबू के दुःख में दुःखी हो जाती है और उसे सांत्वना देती है।

नारी की इसी स्थिति का वर्णन 'बिन्दु और भंवर' उपन्यास में भी किया गया है जिसमें सीमा अमर के लिए अपना सब कुछ न्यौछावर करने के लिए तैयार रहती है–

"लगता है कि जो कुछ मैं हूँ, बस मैं ही हूँ। मुझ से परे मेरा कोई अन्य अस्तित्व नहीं है। मैं ऐसी ही कब से चली आ रही हूँ, सम्भवतः युग–युग से –यह आदर्श, स्वयं अपने में खोकर बाह्य प्रशान्ति का मार्ग पाने का यह उपक्रम क्या शाश्वत नहीं है? निजता में ही कोई स्थिर अनुभूति पाने के लिए यह मन बंदी पंछी की भान्ति छटपटा कर ठण्डा पड़ जाता है। यह यातना!

नहीं, यातना कदापित नहीं है यह, आदर्श की? आदर्श अपने ही संचित ज्ञान–परिवेश का बन्धन भी तो हो सकता है। हाँ, आदर्श भी तो एक बन्धन ही है, अन्तर केवल इतना है कि आदर्श में जो बन्धन है वह आत्म–परितोष–जन्य है फिर चाहे इसकी आधारशिला कैसी भी गीली या दृढ़ –मिट्टी पर क्यों न रखी गई

[59] वही, एक रथ छह पहिए, पृ. 271

हो, परन्तु बन्धन में जो आदर्श है, वह आत्मा –कुण्ठा से प्रसूत अन्ध–कूप में ऐसे जन्तु की खोज करना है जो मन के भ्रम से अधिक कुछ नहीं है। परन्तु किसी विशिष्ट सीमा पर आदर्श क्या बन्धन नहीं बन जाता..।

कैसी विडम्बना है, जिस अमर को मैं अपना सब कुछ बिसार कर भी सम्पन्न एवं हर्षित देखना चाहती हूँ, वहीं तो उत्तरोत्तर –, नहीं, इसी से क्या मुझे पराजय स्वीकार कर लेनी है....''[60]

इस प्रकार डॉ. ज्ञान सिंह मान ने अपने उपन्यासों में आदर्शवाद की स्थापना करके अपने नैतिक कर्त्तव्य को पूरा किया है। आदर्शवाद की समाज में स्थापना से जहाँ समाज का कल्याण सम्भव है, वहीं हमारा चारित्रिक विकास भी होता है और हमारा नैतिक स्तर ऊँचा उठता है।

नैतिकता एवं धर्म

भारतीय विचारधारा नैतिकता और धर्म को प्रायः एक ही मानने की समर्थक है। यहाँ सदैव यह धारणा रही है कि बिना नैतिक पवित्रता के सत्य का ज्ञान नहीं हो सकता। धार्मिक या दार्शनिक व्यक्ति जब भक्त या मुक्त हो जाता है तो उसका जीवन बहुत ऊँचे नैतिक स्तर पर पहुंच जाता है। यही कारण है कि यहाँ धर्मशास्त्र और आचारशास्त्र दोनों की सीमाएँ मिल जाती है। पाश्चात्य जगत् में यद्यपि नैतिकता को धर्म की अपेक्षा समाजशास्त्रीय अधिक समझा जाता है तथापि वहाँ भी उसे धर्म से अविच्छिन्न मानने वालों का अभाव नहीं कहा जा सकता। साधारणतया धर्म को कर्त्तव्य एवं नैतिक धर्म ही माना जाता है जिसका पालन करना व्यक्ति एवं समाज के लिए अति आवश्यक है। 'धार्यते इति धर्मः' अर्थात् जो धारण किया जाता है, वह धर्म है। धर्म की यह व्याख्या उसे आधारभूत नियम एवं कर्त्तव्य दोनों अर्थ देती है। नैतिकता का अभिप्राय भी मूलतः यही है।

ईश्वर के अस्तित्व के प्रति आस्था धर्म का प्रमुख अंग है। यह भी कहा जाता है कि नैतिक जीवन व्यतीत करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि ईश्वर के प्रति विश्वास हो अपितु इस प्रकार की धारणा सदाचार के मार्ग में बाधक हो सकती है। ईश्वर को सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ एवं सम्पूर्ण विश्व का संचालन कर्त्ता मान लेने पर यह प्रश्न उठ सकता है कि यदि विश्व की सभी घटनाएँ एवं सभी व्यक्तियों के संकल्प तथा क्रियाएँ ईश्वर के अधीन है और उसी के द्वारा प्रेरित होती है तब मनुष्य को उसके असत् अथवा अशुभ कर्म के लिए दोषी ठहराना उचित नहीं है, क्योंकि इस कसौटी से कोई कर्म दुष्कर्म नहीं कहला सकता। ईश्वर के प्रति इस प्रकार की धारणा अनैतिक कार्यों को भी प्रश्रय दे सकती है।

[60] डॉ. ज्ञान सिंह मान, बिन्दु और भंवर, पृ. 106 –107

उपर्युक्त मान्यता के विपरीत यह मान्यता अधिक व्याप्त है कि ईश्वर ही नैतिकता का प्रेरक है। धर्म सभी प्राणियों को एक ईश्वर का नाम और रूप सिद्ध करता है और उसके प्रति प्रेम, दया, करुणा के व्यवहार का उपदेश देता है। उसकी दृष्टि में सब प्राणियों में अन्ततोगत्वा वही आत्मा विद्यमान है। अतः किसी को दुःख देना, द्वेष करना, मारना उचित नहीं है। न्यायकारी ईश्वर धर्म–परायण व्यक्ति को शुभ कार्यों के अनुसार फल प्रदान करता है और अनैतिक कर्म करने वाले व्यक्ति को दण्ड। समग्रतः ईश्वर की आस्था के अभाव में समस्त नैतिक नियम प्रभावहीन हो जाते हैं।

कर्म के प्रति विश्वास और आत्मा की अमरता धर्म के महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। धर्म मानता है कि व्यक्ति अपने शुभ–अशुभ कर्मों के प्रति उत्तरदायी है। कर्म के प्रति यह विचार नैतिकता के निर्माण में सहायक है। पुर्नजन्म एवं आत्मा की अमरता के प्रति आस्थावान व्यक्ति जन्मान्तर में प्राप्त अपनी कृतियों के फल के भय से नैतिक कार्यों की ओर प्रेरित होता है। समाज में ऐसे व्यक्ति भी देखे जाते हैं जो नैतिक कार्य करते हुए भी धर्म एवं ईश्वर के प्रति आस्थावान नहीं है तथा नैतिकता के लिए धर्म की उपयोगिता कम नहीं है।

धर्म के अधिकांश तत्त्व अन्ततः नैतिकता के भी आधार हैं। सत्य, न्याय, निष्पक्षता, निष्कपटता, करुण, दया, क्षमा और परोपकार आदि धार्मिक गुणों का पालन ही नैतिकता है। इसी प्रकार मनुष्य के नैतिक जीवन को नियन्त्रित करने वाले शील, सदाचार इत्यादि तत्त्व अन्ततः मानव की धार्मिक उन्नति के आधार भी हैं। इस विवेचन के आधार पर यही निश्चित होता है कि दोनों परस्पर आश्रित है तथा उनकी पृथकता की कोई स्पष्ट विभाजक रेखाएँ नहीं हैं।

घर और समाज की मर्यादा की रक्षा करना नारी का नैतिक कर्त्तव्य है और इस नैतिक कर्त्तव्य से ही धर्म की रक्षा हो सकती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि नैतिकता के क्षेत्र में धर्म का विशेष महत्त्व है। धर्म के माध्यम से ही नैतिक नियम सरल एवं व्यवहारोपयोगी बन जाते हैं। दोनों का सम्बन्ध अन्ततः जीवन के उन तत्त्वों से है जो मानवीय शान्ति एवं एकता के संस्थापक है।

Improving Skillset
Takshila Journal of Research

मान्यता के विपरीत, यह मान्यता अधिक व्याप्त है कि ईश्वर ही नैतिकता का प्रतीक है। डॉ. ज्ञान सिंह मान ने 'मैली पुतली उजले धागे' उपन्यास में कामिनी के वक्तव्य से यह स्पष्ट रूप से परिलक्षित किया है –

"यही उसकी महानता है। वह भली प्रकार से जानता है कि मैंने कला–निकेतन की सेवार्थ कितना रुपया दिया है, इसीलिए तो वह कृतज्ञता और मौन धारण किये हुए हैं। जब तक मैं स्वयं कोई स्पष्टीकरण नहीं

करती, वह कुछ नहीं कहेगा। चित्रकार से 'स्मगलर' की संज्ञा से लांछित होने पर भी वह निचेष्ट ही बना रहेगा।''[61]

डॉ. ज्ञान सिंह मान ने कहा है कि जो मनुष्य अपने जीवन धर्म और नैतिकता को ग्रहण कर लेगा उसका जीवन सुखमय हो जायेगा। 'मृगतृष्णा' उपन्यास में गिरीश रेखा से बातचीत करते हुए यही कहना चाहता है–

''तुम्हारा धर्म क्या यह नहीं कहता कि तुम्हें पति के भावों का भी मान रखना होगा? क्या तुम यही चाहती हो कि जब भी मैं तुम्हारे सम्मुख होऊँ कांटों की सेज–सा कष्ट पाता चला जाऊँ ? मैं तुम्हारे इस हठ को समझ सकने में असमर्थ हूँ, जहाँ तुम्हारा धर्म तुम्हें पति के मर्त्य शरीर में किसी ब्रह्म लोक के अज्ञात पुरुष की कल्पना करने को बाध्य करता है, वहाँ तुम्हारे संस्कार इस बात पर भी बल देते होंगे कि तुम्हारी इच्छा अनिच्छा पति के अनुसार होनी चाहिए –

पुनः गिरीश ने लम्बा सांस लेकर कहा,

'व्यक्तिगत रूप से मैं धर्म अथवा संस्कार के पुराने रिवाजों को नहीं मानता। तुम जो चाहो करो जो मेरी इच्छा थी मैंने प्रकट कर दी–''[62]

ईश्वर के अस्तित्व के प्रति आस्था धर्म का प्रमुख अंग है। यह भी कहा गया है कि नैतिक जीवन व्यतीत करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि ईश्वर के प्रति विश्वास हो अपितु इस प्रकार की धारणा सदाचार के मार्ग में बाधक हो सकती है।

लेकिन कभी–कभी मनुष्य अनैतिकता के पथ पर बढ़ता जाता है और सामाजिक बन्धनों को तोड़ बैठता है। डॉ. ज्ञान सिह मान ने 'एक रथ छह पहिए' उपन्यास में यही दर्शाया है –

"मिस मधु, मैं जानता था कि एक–न–एक दिन मेरे सामने ऐसी विकट एवं गंभीर स्थिति उत्पन्न होने वाली है। परन्तु क्या हमें केवल भावनाओं के परिवेश में ही जीवन का मूल्यांकन और सीमाएँ निर्धारित करनी हैं ? तनिक वर्षा के उपरान्त मुस्कुराती संध्या–सुंदरी के तिरछे नयनों से यदि इन्द्र –धनुष टपक कर स्निग्ध आकाश में बिखर जाये, तो क्या हमें उसे देखकर, धरती के वक्ष पर बिखरी चिकनाहट को भुला देना होगा? कल्पना के उन्नत शिखर पर आसन खोजकर, तराई में आहें भरते विकल झरनों को भुलावा तो नहीं दिया जा सकता? एक प्राध्यापक का अपनी शिष्या से असामाजिक सम्पर्क क्या शोभनीय हो सकता है ? वर्षा की

[61] डॉ. ज्ञान सिंह मान, मैली पुतली उजले धागे, पृ. 149

[62] डॉ. ज्ञान सिंह मान, मृग तृष्णा, पृ. 35

तीखी चोटों से भाव–विह्वल बनी सरिता क्षणभर के लिए अपना वास्तविक धर्म परित्याग करके, कहीं भी वह जाना चाहती है, परन्तु क्या सागर अपनी मर्यादा का उल्लंघन कर पाता है ? नहीं–वह सागर है, क्योंकि वहाँ मर्यादा हैं, कुछ बंधन हैं –मधु तुम ही कहो, क्या यह अनैतिकतापूर्ण नहीं होगा? सामाजिक मूल्यों का क्या कोई महत्त्व नहीं है? विश्व में सभी कुछ इच्छा–अनिच्छा पर ही निर्भर तो नहीं है – ? व्यक्तिगत राग–द्वेषों के दास होने पर भी क्या समष्टिगत सीमाएँ हमारा भाग्य निश्चित नहीं करती? काश, तुमने मेरे प्रति ऐसी धारणा न बनाई होती ?''[63]

नैतिकता का पालन करते हुए मनुष्य कई बार अपना अहित कर बैठता है। 'जलते कलश' उपन्यास में प्रदीप मजदूरों के हक दिलवाने को अपनी नैतिक जिम्मेदारी समझता है और अपनी नौकरी से हाथ धो बैठता है – यह धर्म की व्याख्या भी करता है –

"लगभग आधे से ज्यादा श्रमिक हमारे गैस्ट हाऊस और गोदामों के आस–पास...''

''तो इस सब में नयी बात क्या है? हर साल ऐसे ही होता है, हर साल बारिशें आती हैं... ।''

'लेकिन सर....'

'लेकिन वेकिन छोड़ो–कोई ठोस दलील हो तो....'

प्रदीप ने तनिक साहस बटोरने का प्रयास किया। जो कुछ उसने फार्म के श्रमिकों के लिए किया उसके लिए –उसने होंठ तर किये, सहज वाणी फूटी– "मेरे विचार में तो यह सब श्रमिकों का हक बनता है। यह मान भी लिया जाये कि मेरे पास शैड बनवाने की पूर्व अनुमति नहीं थी, परन्तु क्या बोर्ड मानवीय दृष्टि को सम्मुख... ।'

सैक्रेटरी का पारा शायद आसमान छूने को था। क्रोधवश उन्होंने न जाने अपना भरकम हाथ कब मेज पर थाम दिया। रूखे स्वर ने कमरे की प्रशान्ति भंग कर दी– "मिस्टर प्रदीप कुमार –मानवीय दृष्टि धर्म प्रचार ये बातें हमारे लिए बेमानी हैं। व्यापार और धर्म प्रचार में दिन–रात सा अन्तर है। हम लोग व्यापारी हैं, मानवतावादी धर्म प्रचारक नहीं हैं। धर्म प्रचार के इसी नगर में बिरला मंदिर, जामा मस्जिद, शीश गंज गुरुद्वारा और.....''[64]

[63] डॉ. ज्ञान सिंह मान, एक रथ छह पहिए, पृ. 176

[64] डॉ. ज्ञान सिंह मान, जलते कलश, पृ. 92

धर्म सभी प्राणियों को एक ईश्वर का नाम और रूप सिद्ध करता है और उसके प्रति प्रेम, दया, करुणा के व्यवहार का उपदेश देता है। 'मैली पुतली उजले धागे' उपन्यास में किरण और आचार्य के माध्यम से धर्म और नैतिकता को प्रस्तुत किया है–

"वे तो आश्रम में ही हैं, आचार्य जी की सेवा में रहना और आश्रम के लिए ही जीना –मरना उन्होंने अपने धर्म बना लिए हैं। वे सुखी हैं, समृद्ध हैं, आचार्य जी के आभारी हैं कि उन्होंने एक साधारण कंकर को मोती की कान्ति से रंजित कर दिया है।'' किरण ने इतनी लम्बी और व्यक्तिगत दृष्टि से ऐसी आत्मीय वार्ता कभी नहीं सुनी थी। नये अनुभवों ने मन के भीतर असंख्य नवीन सम्पुट खोल दिये। रहस्यमय अनुभूतियाँ ज्ञानालोक में उद्दीप्त होकर और भी प्रखर हो गई। आन्तरिक कालिमा, द्वेष पूर्ण कोहरा, संकीर्ण मनोभावों की छाया तथा स्वार्थमय मेघों की प्रच्छाया सभी कुछ तो विलीन हो रहे थे। किरण ने वैसा परिवर्तन तो कभी अनुभव नहीं किया था, वह विचारों के सागर में खो गई, चिन्तन ने कुछ उजले मोती किनारे पर फेंक दिये। उसने शंकाकुल नेत्रों से किरण की ओर देखकर कहा।''[65]

'सूखी रेत के घरौंदे' उपन्यास में भी डॉ. ज्ञान सिंह मान ने दर्शाने का प्रयत्न किया है कि धर्म में अनैतिकता का समावेश हो गया है। उपन्यास में अभिनीत धर्म, मठ और सम्प्रदाय को अनैतिक कार्य की नर्सरी कहा है–

'धर्म, मठ या सम्प्रदाय –सभी आतंकवाद के जन्मदाता –'नर्सरी' हैं ये संस्थाएँ। बाहरी सतह पर नहीं–, गहरे में समझना है इन्हें। एक सुमदाय बाबरी मस्जिद गिरा देता है। दूसरी ओर सीमा से परे बौद्ध की प्रतिमाएँ खंड–खंड होने लगती हैं। रमा जी–'

अभिनीत को दीर्घ श्वास भरनी है, हताश एवं दबे स्वर को सशक्त आधार प्रदान करना है –

'कहीं एक स्वर्ण मंदिर ध्वस्त होता है –पी.एम. पर गोलियाँ चलती हैं –, लगता है एक बड़ा वृक्ष गिरा है, विशिष्ट समुदाय के प्रति हिंसक प्रतिक्रिया प्रकट होती है –क्या ये सभी परिणाम कहीं–न–कहीं एक ही मूल भाव से नहीं जुड़े हुए –, अकारण हिंसा और सुरक्षा का अभाव –क्या इसे 'आतंकवादी' विचारधारा से विलग किया जा सकता है?'

लंबी सांस है। भावों और विचारों का अंतराल है। खालीपन –सूनेपन को प्रकट नहीं होने देता। दोनों सतर्क हैं। रमा की पलकें झुकी हैं, अभिनीत के नेत्र चारों ओर परिक्रमा करते हैं, पुनः मेज पर रखे पत्रों पर स्थिर हैं – धीमी सांस लेनी है उसे, कहना है –

[65] डॉ. ज्ञान सिंह मान, मैली पुतली उजले धागे, पृ. 148

''नीति, धर्म और अर्थव्यवस्था –ये तीनों जिस स्थान या परिवेश से उपजते हैं –उस धरती की याद का कभी परित्याग नहीं कर पाते, विभिन्न परिस्थितियों में रोष की भावना, या हिंसक प्रतिक्रिया अलग–अलग होती है।''[66]

इस प्रकार स्पष्ट है कि नैतिकता के क्षेत्र में धर्म का विशेष महत्त्व है। धर्म के माध्यम से ही नैतिक नियम सरल एवं व्यवहारोपयोगी बन जाते हैं। दोनों का सम्बन्ध अन्ततः जीवन के उन तत्त्वों से है जो मानवीय शान्ति एवं एकता के संस्थापक है।

निष्कर्ष

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि मानव–मूल्यों के अंतर्गत धार्मिक एवं नैतिक मूल्यों का सबसे विशिष्ट स्थान है। इन मानव–मूल्यों से ही समाज, देश तथा विश्व को सत्य की ओर ले जाया जा सकता है, क्योंकि मानव –मूल्यों से मानव अपने जीवन में अच्छाई बुराई की पहचान कर स्वयं को सत्य के साथ जोड़ लेता है और जब व्यक्ति का सुधार हो जाएगा तो सारा संसार स्वयं सुधार जाएगा। मानव को सत्य की ओर ले जाने वाले धार्मिक–नैतिक मूल्य ही हैं। धार्मिक –नैतिक मूल्य ही व्यक्ति को समाज में संयत आचरण के लिए विवश करते हैं। नैतिक आचरण हमारे जीवन को नियमित एवं निर्देशित करते हैं। लेकिन आज समय में कुछ बदलाव आया है और मानव धार्मिक–नैतिक मूल्यों की अनदेखी करने लगा है जो कि न स्वयं मानव के लिए बल्कि समाज के लिए भी घातक है। जो समाज को पतन की ओर ले जा सकती है। डॉ. ज्ञान सिंह मान ने इन मूल्यों को अपने साहित्य में अच्छे–बुरे दोनों रूपों में दिखाकर अन्त में धार्मिक –नैतिक मूल्यों की रक्षा के लिए मानव को तत्पर दिखाया है। उन्होंने अपने साहित्य में दिखाया है कि किस प्रकार मानव अपने धर्म के रास्ते से भटक गया है। आज वह धर्म का वास्तविक अर्थ ग्रहण न करके उसका संकीर्ण अर्थ ग्रहण कर रहा है जिस कारण समाज में अंधविश्वास, बाह्याडम्बर, पाखण्ड आदि को बढ़ावा मिल रहा है। इसके साथ ही लोग धर्म के नाम पर लड़ रहे हैं, एक–दूसरे का खून बहा रहे हैं। वे अपने धर्म को तो महत्त्व देते हैं लेकिन दूसरों के धर्म को तुच्छ समझते हैं और ऐसा धर्म के ठेकेदारों के कारण होता है। वे अपने स्वार्थ के कारण लोगों को आपस में लड़वाते हैं और न समझ लोग उनकी बातों में आते रहते हैं। इसी प्रकार लेखक ने दिखाया है कि आज मानव के नैतिक मूल्य भी खत्म हो रहे हैं। वह वहाँ समाज में अनैतिक यौन संबंध रखता है, वहीं व्यभिचार फैलाता है और नारी पर अत्याचार करता है। वह समाज में नशा करता है तथा अनेक ऐसे घिनौने कृत्य करता है जो नैतिक दृष्टि से अमानवीय होते हैं। उसका नैतिक स्तर इस हद तक गिर गया है कि वह बलात्कार जैसे घिनौने कृत्य करके औरत को मौत के

[66] डॉ. ज्ञान सिंह मान, सिमटता सागर, पृ. 20

घाट इस बेरहमी से उतारता है कि वह एक बार तो मौत भी कांप उठे। लेखक ने अपने साहित्य में धर्म और नैतिकता के इन कुकृत्यों का वर्णन करके उसका पुरजोर विरोध किया है तथा मनुष्य को कर्म के सिद्धान्त का पाठ पढ़ाने के साथ–साथ आदर्शवादी जीवन जीने का निर्देश दिया है और जीवन के लिए धर्म और नैतिकता की कितनी आवश्यकता है, इस बात को भी बताया है। उन्होंने बताया कि जब मानव अपने जीवन में सच्चे धर्म एवं नैतिकता को अपना लेगा तो उसका जीवन सुखमय हो जाएगा। तब उसे पाप करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी, क्योंकि जहाँ धर्म हमें धार्मिक सद्भाव सिखाता है, जो हमें मानसिक शान्ति देता है, वहीं नैतिकता हमें सत्य, अहिंसा तथा सदाचार सिखाती है और हमारे अन्दर परोपकार की भावना पैदा हो जाती है। धर्म का आधार नैतिकता है, तो नैतिकता को अपने धर्म का पालन करके निभाया जा सकता है। इसलिए लेखक ने मानव को नैतिक मूल्यों को जीवन में धारण करने की सलाह दी है ताकि सब प्रेम–प्यार से तथा शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकें।

Improving Skillset
Takshila Journal of Research